विषय सूची

प्रस्तावना (PREFACE)
भूमिका (INTRODUCTION)
सृष्टि का उद्भव और विकास (DEVELOPMENT & OF
जाति का वर्तमान प्रकृति में रूप
जीव जंतुओं का वर्गीकरण
मांसभक्षी वर्ग
(बिल्ली वंश)
१ शेर सिंह
२ शेर
३ बाघ
४ चीतावाघ
५ हिम बाघ
६ वृक्ष बाघ
७ बिल्लियाँ
- सियामी बिल्ली
- जंगली बिल्ली
- बाघ बिल्ली
- चितकबरी बिल्ली
- मिस्त्री बिल्ली
- वन बिल्ली

८ स्याहगोश
९ चीता
(भालू वंश)
१० भालू
११ सफेद भालू
१२ हिमालय का काला भालू
१३ कुत्ता भालू
(कुत्ता वंश)
१४ भेड़िया
१५ सियार
१६ जंगली कुत्ता
१७ लोमड़ी
(रीछ वंश)
१८ चरख या लकड़बग्घा

(कस्तूरी वंश)

१९ कटास

२० कस्तूरी

२१ - मुसंग या ताड़ बिल्ली

२२. छुद्रदंत ताड़बिल्ली

२३. नेवला

(चितराला वंश)

२४ चितराला

२५ कथियान्याल

२६ बिज्जू

२७ - बालू-भालू

२८ - ऊदबिलाव

~~२९~~

७. शफ वर्ग

(गज वंश)

२९ - हाथी

(गैंडा वंश)

३०. गैंडा

(शूकर वंश)

३१ - सूअर

(अश्व वंश)

३२ . जंगली गदहा (गोरखर)

(गो वंश)

३३ - गौर

३४ - गपाल

३५ - ~~[illegible]~~ जंगली भैंस या अरना

(बारहसिंगा-वंश)

३६ - हंगल

३७ - चीतल

३८ - सांभर

३९ - पाड़ा

४० - गौंड

४१ - काकड़

४२ - कस्तूरा

४३ - संगाई

(गवय वंश)

४४ - नीलगाय

४५ - चिकारा

४६- काला हिरन
४७- चौसिंगा
(पिसूरी वंश)
४८- पिसूरी
(गज वंश)
४९- साकिन
५०- मारखोर
५१- थार
५२- नीलगिरी का जंगली बकरा
५३- अरियल या शा
५४- बरड़
(घुरड़ उपवंश)
५५- घुरड़
५६- सिराव

८. वानर वर्ग
(लजीला वानर वंश)

५७- लजीला वानर
५८- तवांगु
(वानर वंश)
५९- बन्दर
६०- लंगूर
६१- हनूमान या शुद्ध लंगूर
६२- हिमालय का लंगूर
६३- मद्रास का लंगूर
६४- नीलगिरी का लंगूर
६५- सेपीदार लंगूर
६६- नील बन्दर
(वनमानुष वंश)
६७- अलक या हूलक

९. कुतरने वाला वर्ग
(गिलहरी वंश)

६८. बड़ी गिलहरी या जंगली गिलहरी
६९. रुकिया
७०. शिंग शाम
७१. गिलहरी
(उड़नगिलहरी वंश)
७२. उड़नगिलहरी
(मूषक वंश)

७३ - घर की चुहिया
७४ - घर का बड़ा चूहा
७५ - काला चूहा
७६ - खेत का सफेद चूहा
७७ - दक्षिण कोरेवत का चूहा
७८ - घूंस
७९ - हिरना मूसा

(सेही वंश)

८० - सेही
(खरगोश वंश)
८१ - खरगोश
(रंगदुनी वंश)
८२ - रंगदुनी

२० - गादुर वर्ग
(गादुर वंश)

८३ - उड़न लोखरी या गादुर
८४ - पुच्छल गादुर
८५ - लघु नासिका गादुर
८६ - दीर्घ जीभी गादुर
(कीट भक्षी चमगादड़)
८७ - ज्यूरव उपानह ज्यौर पर्णनासिका
८८ - दिखावटी रक्त चूसक चमगादड़
(साधारण चमगादड़)
८९ - लम्बकर्ण
९० - हिमालय का वार्वस्ट्रेली
९१ - पिपिस्ट्रैली
९२ - सेरोटिन
९३ - नलीनासिका
९४ - लालसिलेटी
(मुक्त पुच्छ कीट भक्षक चमगादड़)
९५ - कब्रधारी
९६ - लम्ब पुच्छ

११— छछूंदर वर्ग
(छछूंदर वंश)

९९- छछूंदर
(कांटा चूहा वंश)

९८ मांद का चूहा

१२— मेंढक वर्ग
(वायु वंश)

९९- मेंढक
१००- मेंढकी
१०१- मेचक
१०२- मदोवर
(भेक वंश)
१०३- भेक (दर)

१३— नक्र वर्ग (नक्र वंश)
१०४ मगर
१०५ घड़ियाल
१०६ दलदल का छोटा मगर

१४ – कच्छप वर्ग

(स्थल कच्छप वंश)

१०७ – साल कछुआ

१०८ – छतुआ कछुआ

१०९ – वैष्णव अथवा रामानंदी कछुआ

(जल कच्छप वंश)

११० – सेवार कछुआ

१११ – दक्षिणी चिकना कछुआ

११२ – पंक कछुआ

(समुद्री कच्छप वंश)

११३ – हरा कछुआ

११४ – बाजचंचु कछुआ

१५ – गोधा वर्ग

(छिपकली वंश)

११५ – छिपकली

(कोतरी वंश)

११६ – कोतरी

(बम्हनी वंश)

११७ – बम्हनी

(गोह वंश)

११८ – साधारण गोह

११९ – चन्दन गोह

१२० – कबरी गोह

(गिरगिट वंश)

१२१ ~~१०६~~ गिरगिट

१२२ ~~१००~~ सांडा

(बहुरूपी वंश)

१२३ ~~१००~~ बहुरूपी

१६ – सर्प वर्ग

~~(विषैले सांप)~~

(क) काले सांप

१२४ – नाग

१२५ – नागराज

(ख) करैत

१२६ – साधारण करैत

१२७ – गंडेदार करैत

(ग) धोबिया सांप (गड़ढ़ हीन)

१२८ – रसल धोबिया

१२९ – फुरसा धोबिया

१३० – मैकमोहन धोबिया

१३१ – लैवेन्टाइन धोबिया

१३२ – गड़ढ़ धोबियों के ग्यारह प्रकार

(झ) धामिन सांप

१४२ - साधारण धामिन सांप
१४३ - शौ धामिन सांप
१४४ - ग्रे धामिन सांप
१४५ - आकर्षक धामिन सांप
१४६ - शाही धामिन सांप

(ञ) वृक्ष सांप

१४७ - कोड़ा, मार्जार, कांस पीठ और सुनहरी सांप

(ट) बलुआ सांप

१४८ - बलुआ सांप

(ठ) वृक्ष सांप

१४९ - साधारण वृक्ष सांप, धारीदार वृक्ष सांप और पीले चितेदार वृक्ष सांप

(ड) मुंडेरदार सांप

१५० - मुंडेरदार सांप

(ढ) पनिहा सांप

१५१ - पनिहा सांप

---

१३३ - समुद्री सांप

(ङ) भूगिया सांप

१३४ - ~~[illegible]~~ - विवरण भूगिया सांप
१३५ - मेकलेलैंड भूगिया सांप
१३६ - लालगा भूगिया
१३७ - साधारण तीय भूगिया सांप

(च)

१३८ - अंधे सांप
१३९ - बिलों में या जमीन में रहनेवाले सांप

(छ) दुमुही सांप

१४० - दुमुही सांप

(ज)

१४१ - अजगर

प्रस्तावना (PREFACE)

हमारा देश जंगली जीवों के लिये प्रसिद्ध है। हमारे देश को छोड़कर अन्य देशों में भी बड़े ही विचित्र तथा आकर्षक जंगली जीव पाये जाते हैं। जंगली जीवों के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करना केवल कौतूहल की दृष्टि से आवश्यक नहीं है वरन वह बड़ा मनोरंजक भी है। भूमंडल १ सृष्टि की रचना कैसे हुई, सृष्टि का विकास कैसे हुआ और उस रचना में मनुष्य का क्या स्थान है? प्राचीन युग के अनेक भीमकाय जीवों का लोप क्यों हो गया और उस दृष्टि से क्या अनेक अनेक वर्तमान जंगली जीवों के लोप होने की कोई आशंका है! मानव समाज और जंगली जीवों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? यदि जंगली जीव भूमण्डल पर न रहें तो मनुष्य के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तेजी से बढ़ती हुई आबादी की प्रतिक्रिया जंगली जीवों पर क्या होगी एकता है- ये विषय गहन चिन्तन और अध्ययन के हैं।

पर भारत के जंगली जीवों का समूह तथा उनके समुदाय भूमण्डल के अन्य देशों के जीवों के समान है या यों कहो में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता कि विश्व के जंगली जीवों का यदि वर्गीकरण किया जाय तो भारत के जंगली जीव भी उसी वर्गीकरण में आजाते हैं। इसलिये भारत के जंगली जीवों का विषय वर्णन देने से पूर्व विश्व के जीव जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण देना आवश्यक है ताकि पाठक भली भांति समझलें कि भारत के जंगली जीवों का स्थान इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में क्या है और वे विश्व के जंगली जानवरों के वर्गीकरण के एक ही क्रम में आते हैं

जीव जन्तुओं के वर्गीकरण से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि सृष्टि रचना कैसे हुई। पहले पेड़ हुये या गतिशील प्राणी, फिर सृष्टि रचना की क्रिया अब से कितने वर्ष पूर्व हुई? इस सृष्टि रचना में मनुष्य का आविर्भाव कब हुआ? सृष्टि के इस अहापोह में विभिन्न जीव जन्तुओं में क्या कोई समता है? वैज्ञानिक दृष्टि से उसको कैसे समझा जाय।

प्रस्तुत पुस्तक ,भारत के जंगली जीव, प्रवेशिका के रूप में नहीं है और इसलिये जंगली जीव जन्तुओं का वर्गीकरण शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किया जायगा। जीव जन्तुओं के वर्गीकरण का विषय है तो बड़ा क्लिष्ट पर साथ ही वह बड़ा रोचक है और इस विषय के समझने के लिये बड़ा ही आवश्यक। इसलिये भारत के जंगली जीवों पर लिखने से पूर्व सृष्टि की रचना और उसका विकास, भूमण्डल और मा

भौतिक निर्माण पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डालने के उपरान्त जीव जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया जायगा ।

भारत के जंगली जीव शीर्षक से जो प्रवेशिका पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें लेखक ने भारत के अनेक जंगली जीवों पर जानबूझ कर इसलिये नहीं लिखा कि उन सबका वर्णन करने से एक तो पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जाता और साथ ही यह भी आशंका थी कि इस विषय में प्रवेश करने वालों के लिये विषय वर्णन शायद अरुचिकर भी हो । यह प्रस्तुत बड़े ग्रंथ में जहां भारत के जंगली जीवों पर विषय रूप से लिखा जा रहा है वहां क्लिष्ट बातों को सरल रूप में प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हुये कोई भी आवश्यक बात छोड़ी नहीं है । यहां यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि अभी तक हमारे देशवासियों ने जंगली जानवरों के विषय में मौलिक खोज करने का प्रयत्न ही नहीं किया । जो कुछ पुस्तकें हिन्दी में निकली है वे अधिकांश अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों के आधार पर ही लिखी गई हैं , फलस्वरूप उनकी गलतियों की भी पुनरावृत्ति कर ली गई है । उदाहरण के लिये अंग्रेजी की 'रायल नेचुरल हिस्ट्री' जैसी प्रमाणिक पुस्तक में घड़ियाल ( ) के विषय में लिखा है कि घड़ियाल केवल मछली खानेवाला पानी का जानवर है । इसके अतिरिक्त उस महत्वपूर्णपुस्तक में घड़ियाल का चित्र भी ठीक नहीं है । भारत के जंगली जीवों के प्रति जो रुचि रखते हैं और उनके विषय में जो आधुनिक तम जानकारी रखने का प्रयत्न करते हैं वे जानते हैं कि भारत में चीता जंगली रूप में अब नहीं पाया जाता । अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तकों में जंगली चीते के रहन सहन और उसके रहने के स्थान का वर्णन है । पर वास्तविकता यह है कि जंगली चीता एक प्रकार से भारत के मैदानों और फाड़ियों से एक प्रकार से लोप ही हो गया है । भारत की वन शोभा का एक प्राणी समाप्त हो जाय यह दुख की बात है । भूल से लोग शेर ( ) को चीता कहते हैं । और बाघ नाम से भी सम्बोधित करते हैं पर यह बात गलत है । शेर, बाघ( ) और चीते में से चीता आसानी से पाला जा सकता है । चीते और बाघ में गहराई से देखने पर पता चलता है कि चीते की टांगें अपेक्षाकृत पतली होती हैं और नाखून बाहर निकले रहते हैं । बाघ से उसके गुल (धब्बे) भी भिन्न होते हैं और अगला हिस्सा अपेक्षाकृत भारी होता है ।

प्रवेशिका पुस्तक की भांति इस बड़े ग्रंथ में भी शेर शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'टाइगर' शब्द के लिये किया गया है । अंग्रेजी के 'लैपर्ड' या 'पैंथर' को कहीं गुलदार कहीं चीता, कहीं बघेरा और कहीं तेंदुआ कहते हैं। लेखक शेर, पैंथर, को बाघ कहता है और गत इकतालीस वर्षों से

वह ऐसा ही लिख रहा है ।

भारत से हिमबाघ ( ) कस्तूरा ( ) मारखोट, जंगली भैंस, गौर कब्बू कोवक जंगली गधा लोप होने की सीमा पर पहुंच ही गये हैं । भारत का प्रसिद्ध गैंडा भी खतम हो जायगा क्योंकि वह भी खतम होने की सीमा के निकट है । सरकार के निरन्तर-में विशेष संरक्षण से अब तक गैंडा बचा हुआ है और यदि हिमबाघ, कस्तूरा, जंगली भैंस तथा गौर को समुचित संरक्षण नहीं मिला तो वे मिट ही जायेंगे । मैदानों की शोभा काला हिरन और चिकारा ( ) का भविष्य भी अंधकारमय है । सन् १९२५-२६ तक जहां काले हिरनों के ४००-५०० के झुंड पाये जाते थे वहां इक्के दुक्के हिरन ही पाये जाते हैं और चिकारा तो अनेक स्थानों से लोप हो गया । जंगली हाथी का भविष्य भी उज्जवल नहीं है । बढ़ती आबादी असंतुलित खेती और जंगलों के कट जाने से यह स्थिति पैदा हो गई है, और यदि संतुलित ढंग से जानवारों की रक्षा नहीं की गई तो मानव समाज का अहित भी निश्चित है । जंगली जानवरों की संख्या संतुलित ढंग से सुरक्षित होनी चाहिये क्योंकि जंगली जानवर हमारे देश में केवल शोभा के लिये भी नहीं है, वरन संतुलित जीवन और उद्योग धन्धों की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी हैं ।

मनुष्य और जंगली जानवरों का सम्बन्ध अति प्राचीन है । यदि भारतीय साहित्य से जंगली जानवरों का वर्णन हटा दिया जाय तो हमारा साहित्य बड़ा कंगाल हो जायगा और साथ ही मनुष्य की बुद्धि भी अपेक्षाकृत कंठित हो जायगी, क्योंकि अलंकारों और उपमाओं में उपयोगिता और सजीवता के लिये जंगली जीवों की चर्चा आती है । लेखक ने जंगली जानवरों सम्बन्धी घटनाओं और वर्णनों को एकत्र करने के लिये रामायण, महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश,, कालीदास के ग्रंथ कथा सरित सागर और जातक कथाओं का अध्ययन किया । यदि उन सब कहानियों को एकत्र करके प्रकाशित किया जाय तो एक पोथा सा तैयार हो जायगा । पर इस ग्रंथ की रोचकता तथा उपादेयता बढ़ाने के लिये लेखक ने उपर्युक्त पुस्तक में वर्णित जानवरों संबन्धी कहानियों को एकत्र करके दुबारा लिख दिया है । कहानियों के विस्तार को छोड़कर मूल कहानी में कोई अंतर नहीं आने दिया है । इस पुस्तक के परिशिष्ठ में वे सब कहानियां रख दी गई हैं । इसके अतिरिक्त शकुन विचार की दृष्टि से कर्नल, स्लीमैन की अप्राप्य पुस्तक ठगों की बोली-रमासिया से भी जंगली जानवरों से सम्बन्ध रखने वाले शकुनों को भी दिया गया है । शकुनों पर विश्वास किया जाय या न किया जाय- यह बात इस पुस्तक

विषय से परे की है। पर उन शकुनों को देने का तात्पर्य यही है कि मनुष्य प्राचीन काल से ही जंगली जानवरों की गतिविधिओं को लक्ष्य कर प्रोग्राम बनाते थे जिनमें से अनेक तो अब भी गावों में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय साहित्य में अनेक जंगली जानवरों पर एक एक पृथक प्रामाणित सचित्र पुस्तक लिखी जाय, पर इस कार्य के लिये लेखकों की मनोवृति के अतिरिक्त गहन अध्ययन की भी आवश्यकता है। चीतकल जंगली हाथी, शेर, बघेरा, गीदड़, घड़ियाल, काला सांप तथा अन्य जानवरों पर बड़ी ही आकर्षक और सजीव पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

इस ग्रंथ के लिखने में लेखक ने अपने इकतालीस बयालीस वर्षों के जंगली जानवारों का व्यक्तिगत ज्ञान, प्रकृति निरीक्षण प्रवृति, शिकार तथा पुस्तकों का आधार लिया है। जिन पुस्तकों और जिन महानुभावों से लेखक को सहायता मिली है उनके नाम, आभार प्रदर्शन, शीर्षक से अलग दिये गये हैं।

विजया दशमी
१०-६१

श्रीराम शर्मा

प्रस्तावना

हमारा देश जंगली जीवों के लिए प्रसिद्ध है। हमारे देश को ~~छोड़कर~~ प्रतिरिक्त अन्य देशों में भी बड़े ही विचित्र तथा आकर्षक जंगली जीव पाये जाते हैं। जंगली जीवों के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करना केवल कौतूहल की ही दृष्टि से आवश्यक नहीं है वरन् वह बड़ा मनोरंजक भी है। भूमण्डल पर सृष्टि की रचना कैसे हुई, सृष्टि का विकास कैसे हुआ और उस रचना में मनुष्य का क्या स्थान है? प्राचीन युग के अनेक भीमकाय जीवों का लोप क्यों हो गया और उस दृष्टि से क्या अनेक वर्तमान जंगली जीवों के लोप होने की कोई आशंका है? मानव समाज और जंगली जीवों का पारस्परिक संबंध क्या है? यदि जंगली जीव भूमण्डल पर न रहें तो मनुष्य के आर्थिक विकास पर क्या प्रभा पड़ेगा? तेज़ी से बढ़ती हुई आबादी की प्रतिक्रिया जंगली जीवों पर क्या हो सकती है - ये विषय गहन चिन्तन और अध्ययन के हैं।

भारत के जंगली जीवों का समूह तथा उनके समुदाय भूमण्डल के अन्य देशों के जीवों के समान है पर यों कहना भी ~~कोई अतिरंजित~~ अनुचित नहीं है कि विश्व के जंगली जीवों का यदि वर्गीकरण किया जाय तो भारत के जंगली जीव भी उसी वर्गीकरण में आ जाते हैं। इसलिए भारत के जंगली जीवों का विषद वर्णन देने से पूर्व विश्व के ~~जंगली जीवों~~ जीव जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण देना आवश्यक है ताकि पाठक भली भाँति समझ सकें कि भारत के जंगली जीवों का स्थान इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में क्या है और वे विश्व के जंगली जानवरों के वर्गीकरण के ~~एक ही~~ किस क्रम में आते हैं।

जीव जन्तुओं के वर्गीकरण से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि सृष्टि रचना कैसे हुई। पहले पेड़ हर या गतिशील प्राणी? फिर सृष्टि रचना की क्रिया अब से कितने वर्ष पूर्व हुई? इस सृष्टि रचना में मनुष्य का आविर्भाव कब हुआ? सृष्टि के इस ऊहापोह में विभिन्न जीव जंतुओं में क्या कोई समता है? वैज्ञानिक दृष्टि से उसको कैसे समझा जाय?

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत के जंगली जीव' प्रवेशिका के रूप में नहीं है और इसमें इसलिए जंगली जीव जन्तुओं का वर्गीकरण शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किया ~~जायगा~~ गया है। जीवजन्तुओं

के वर्गीकरण का विषय है तो बड़ा क्लिष्ट पर साथ ही वह बड़ा रोचक भी है और इस विषय को समझने के लिए बड़ा ही आवश्यक। अतः भारत के जंगली जीवों पर लिखने से पूर्व सृष्टि की रचना और उसका विकास, भूमण्डल और भारत के भौतिक निर्माण पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डालने के उपरांत जीव जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है।

'भारत के जंगली जीव' शीर्षक से जो प्रवेशिका पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें लेखक ने भारत के अनेक जंगली जीवों पर जानबूझ कर इसलिए नहीं लिखा कि सबका वर्णन करने से एक तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाता और साथ ही यह भी आशंका थी कि इस विषय में प्रवेश करने वालों के लिए विषय वर्णन शायद अरुचिकर भी होता। पर प्रस्तुत बड़े ग्रंथ में जहां भारत के जंगली जीवों पर विषद रूप से लिखा गया है वहां क्लिष्ट बातों को सरल रूप में वर्णित करने का प्रयास करते हुए कोई भी आवश्यक बात छोड़ी नहीं गई है। यहां यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि अभी तक हमारे देशवासियों ने जंगली जानवरों के विषय में यथेष्ट मौलिक खोज करने का प्रयत्न नहीं किया। जो कुछ पुस्तकें हिन्दी में निकली हैं वे अधिकांश अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों के आधार पर ही लिखी गई हैं और उनकी गलतियों की भी पुनरावृत्ति कर ली गई है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी की 'सेपल नेचुरल हिस्ट्री' जैसी प्रामाणिक पुस्तक में घड़ियाल (Gangetic Gavial) के विषय में लिखा है कि घड़ियाल केवल मछली खानेवाला बाजे पानी का जानवर है। इसके अतिरिक्त उस महत्वपूर्ण पुस्तक में घड़ियाल का चित्र भी ठीक नहीं है। भारत के जंगली जीवों के प्रति जो रुचि रखते हैं और उनके विषय में जो आधुनिकतम जानकारी रखने का प्रयत्न करते हैं वे जानते हैं कि भारत में चीता जंगली रूप में अब नहीं पाया जाता। अंग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तकों में जंगली चीते के रहन सहन और उसके रहने के स्थान का वर्णन है। पर वास्तविकता यह है कि जंगली चीता एक प्रकार से भारत के मैदानों और झाड़ियों से एक प्रकार से लोप ही हो गया है। भारत की वन्य शोभा का एक प्राणी समाप्त हो जाय यह दुःख की बात है। भूल से लोग शेर (Tiger) को चीता कहते हैं

~~लिखा है। जिन पुस्तकों और जिन महानुभावों से लेखक को सहायता मिली है उन के नाम आभार प्रदर्शन शीर्षक से अलग दिए गए हैं।~~

मनुष्य और जंगली जानवरों का संबंध अति प्राचीन है। यदि भारतीय साहित्य से जंगली जानवरों का वर्णन हटा दिया जाय तो हमारा साहित्य बड़ा कंगाल हो जायगा और साथ ही मनुष्य की बुद्धि भी अपेक्षाकृत कुंठित हो जायेगी क्योंकि अलंकारों और उपमाओं में उपयोगिता और सजीवता के लिए जंगली जीवों की चर्चा आती है। ~~लेखक ने जंगली जानवरों संबंधी घटनाओं और वर्णनों को एकत्र करने के लिए रामायण, महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित सागर और जातक कथाओं का अध्ययन किया। यदि उन सब कहानियों को एकत्र करके प्रकाशित किया जाय तो एक पोथा सा तैयार हो जायगा। पर इस ग्रंथ की रोचकता तथा उपादेयता बढ़ाने के लिए लेखक ने उपर्युक्त पुस्तक में वर्णित जानवरों संबंधी कहानियों को एकत्र करके दुबारा लिख दिया है। कहानियों के विस्तार को छोड़कर मूल कहानी में कोई अंतर नहीं आने दिया है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में वे सब कहानियाँ रख दी गई हैं। इसके अतिरिक्त शकुन विचार की दृष्टि से कर्नल स्लीमैन की अप्राप्य पुस्तक 'ठगों की बोली-रमानिया' से भी जंगली जानवरों से संबंध रखने वाले शकुनों को भी दिया गया है। शकुनों पर विश्वास किया जाय या न किया जाय — यह बात इस पुस्तक विषय से परे की है। पर ~~[illegible]~~ उन शकुनों को देने का तात्पर्य यही है कि ~~मनुष्य प्राचीन काल से ही जंगली जानवरों की गतिविधियों को लक्ष्य कर प्रोग्राम बनाते थे जिनमें से अनेक तो अब भी गाँवों में ज्यों के त्यों प्रचलित हैं।~~

आवश्यकता इस बात की है, कि भारतीय साहित्य में अनेक जंगली जानवरों पर एक एक पृथक प्रामाणिक सचित्र पुस्तक लिखी जाय, पर इस कार्य के लिए लेखकों की ~~[illegible]~~ नोवृत्ति के अतिरिक्त गहन अध्ययन की भी आवश्यकता है। चीतल जंगली हाथी, शेर, बघेरा, गीदड़, घड़ियाल, काला साँप तथा अन्य जानवरों पर बड़ी ही आकर्षक और सजीव पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

इस ग्रंथ के लिखने में लेखक ने अपने इकतालिस बयालीस वर्षों के जंगली जानवरों संबंधी व्यक्तिगत ज्ञान, प्रकृति निरीक्षण, प्रवृत्ति, शिकार तथा पुस्तकों का आधार लिया है। ~~जिन पुस्तकों और जिन महानुभावों से लेखक को सहायता मिली है उनके नाम आभार प्रदर्शन शीर्षक से अलग दिए गए हैं।~~

~~विजया दशमी~~
~~ई० १०-[illegible]~~

~~श्रीराम शर्मा~~

और बाघ नाम से भी उसे संबोधित करते हैं पर यह बात गलत है। शेर, बाघ (Leopard) और चीते में से चीता आसानी से पाला जा सकता है। चीते और बाघ में गहराई से देखने पर पता चलता है कि चीते की टाँगें अपेक्षाकृत पतली होती हैं और नाखून कुछ बाहर निकले रहते हैं। बाघ से उसके गुल (धब्बे) भी भिन्न होते हैं और अगला हिस्सा अपेक्षाकृत भारी नहीं होता।

प्रवेशिका पुस्तक की भाँति इस बड़े ग्रंथ में भी शेर शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'टाइगर' शब्द के लिए किया गया है। अँग्रेजी के 'लैपर्ड' या 'पैंथर' को कहीं गुलदार, कहीं चीता, कहीं बघेरा और कहीं तेंदुआ कहते हैं। लेखक 'लैपर्ड' और 'पैंथर' को बाघ कहता है और गत इकतालीस वर्षों से वह ~~ऐसा ही लिख रहा है~~ // लैपर्ड और पैंथर' को बाघ ही लिखता आया है।

भारत से हिम बाघ (Snow Leopard), कस्तूरा (Musk Deer), मारखोर, जंगली भैंस, गौर, कुछ की खाड़ी का जंगली गधा लोप होने की सीमा पर पहुँच ही गए हैं। यदि ही स्थिति रही तो भारत का प्रसिद्ध गैंडा भी खतम हो जायगा क्योंकि वह भी खतम होने की सीमा के निकट है। ~~विशेष प्रयत्नों~~ सरकार के विशेष संरक्षण से अब तक भारत में गैंडा बचा हुआ है और यदि हिम बाघ, कस्तूरा, जंगली भैंस तथा गौर को समुचित संरक्षण नहीं मिला तो वे मिट ही जायेंगे। मैदानों की शोभा काला हिरन और चिकारे (Ravine Deer) का भविष्य भी अंधकारमय है। सन् १९२५-२६ तक जहाँ काले हिरनों के ४००-५०० के झुंड पाये जाते थे वहाँ इक्के दुक्के हिरन ही पाये जाते हैं और चिकारा तो अनेक स्थानों से लोप हो गया है। जंगली हाथी का भविष्य भी उज्ज्वल नहीं है। बढ़ती आबादी, असंतुलित खेती और जंगलों के कट जाने से यह स्थिति पैदा हो गई है, और यदि संतुलित ढंग से जानवरों की रक्षा नहीं की गई तो मानव समाज का अहित भी निश्चित है। जंगली जानवरों की संख्या संतुलित ढंग से सुरक्षित होनी चाहिए क्योंकि जंगली जानवर हमारे देश में केवल शोभा के लिए ही नहीं है ~~क~~ वरन संतुलित जीवन और उद्योग धंधों की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी हैं।

~~इस ग्रंथ के लिखने में लेखक ने अपने इकतालीस बयालीस वर्षों के अपने जंगली जानवरों के अनुभव को व्यक्तिगत ज्ञान, [illegible], शिकार तथा पुस्तकों के आधार~~

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि प्रस्तुत पुस्तक का संबंध केवल भारत के जंगली जीवों से है। ~~इसलिए है क्योंकि इस~~ ~~विषय पर इसी शीर्षक से पहले~~ ~~प्रकाशक एक अलग पुस्तक~~ ~~निकाल चुके हैं~~ ~~समूह~~ के पाँच समुदायों में (१) मत्स्य (२) उभयचर (३) उरग (४) पक्षी और (५) स्तनपायी हैं। इनमें से पक्षियों के ऊपर कुछ नहीं लिखा जायगा क्योंकि ~~प्रस्तुत पुस्तक के~~ भारत सरकार के विनाग ने एक पुस्तक भारत के पक्षियों पर पहले ही प्रकाशित कर दी है। मत्स्य समुदाय पर भी इस पुस्तक में कुछ नहीं लिखा जा रहा क्योंकि मछलियों का विषय भी इतना रोचक और बड़ा है कि यदि प्रस्तुत पुस्तक में उस पर कुछ लिखा जाय तो पुस्तक का ~~आकार~~ कलेवर ~~बड़ा~~ बढ़ हो ~~ही~~ जायगा ~~अतः~~ इसलिए मत्स्य समुदाय को इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया है।

लेखक ने इस पुस्तक के लिखने में अपने अनुभव के अतिरिक्त अँग्रेजी की अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों से सहायता ली है और श्री लेडेकर द्वारा संपादित अँग्रेजी की प्रामाणिक पुस्तक 'ऐथल नेचुरल हिस्ट्री' से विशेष सहायता ली है। साथ ही लेखक ने डनवा ब्रेन्ड की पुस्तक 'वाइल्ड एनिमल्स इन सेंट्रल इंडिया', सर सैमुअल बेकर की 'वाइल्ड बीस्ट एण्ड देयर वेज़', जिम कॉर्बेट की 'मैन ईटिंग लैपर्ड ऑफ रुद्रप्रयाग', 'मैन ईटर्स ऑफ कुमाऊँ' और 'टेम्पिल टाइगर एण्ड अदर मैन ईटर्स ऑफ कुमाऊँ', ७ चैम्पियन की 'विद गन कैमरा इन टाइगर लैंड', ~~[illegible]~~ की 'जंगल लोर' और श्री सालीम अली की ~~[illegible]~~ पुस्तकों तथा अनेक अन्य पुस्तकों से सहायता ली है। अँग्रेजी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र 'नेचुरलिस्ट' में प्रकाशित अनेक लेखों से लेखक को काफी सहायता मिली है। ये शिकारी और जंगली जीवों संबंधी अनेक अन्य पुस्तकों से भी लेखक ने लाभ उठाया है। इसलिए वह उपर्युक्त पुस्तकों के लेखकों और प्रकाशकों का आभारी है।

लेखक अपने मित्र श्री जगतमोहन बैनर्जी आई. ए. एस. चीफ कमिश्नर मणिपुर और वहाँ के वन विभाग के

अधिकारी का भी बहुत आभारी है जिन्होंने वहाँ के मस्तक प्रसिद्ध मस्तक श्रृंग हिरन पर एक प्रामाणिक लेख लिख कर दिया।

~~मध्यप्रदेश, आंध्र, मैसूर और कश्मीर राज्यों के वनविभागों चीफ कनजर्वेटरों का भी लेखक आभारी है जिन्होंने गौर, जंगली भैंस और हंगल आदि के विषय में सूचना देने में सहायता की।~~

उत्तरप्रदेश के कृषि विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर श्री शेरसिंह ने चीतल, बघेरा, हाथी आदि के सुन्दर चित्र देकर इस पुस्तक को अलंकृत करने में जो योग दिया है उसके लिए लेखक बहुत आभारी है।

भारत सरकार के सूचना विभाग तथा पब्लिकेशन्स डिवीजन के कर्मचारियों ने परामर्श देकर लेखक की जो सहायता की है उसके लिए भी लेखक उनको धन्यवाद देता है।

~~अंत में पुस्तक के परिशिष्ट में जंगली जानवरों संबंधी जो कहानियां दी गई हैं वे पंचतंत्र, रामायण, महाभारत, ईसप की कहानियां तथा जातक कथाओं से ली गई हैं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित और श्री भदंत कौशल्यायन द्वारा लिखित जातक कहानियों से लेखक ने कहानियां संकलित की हैं इसलिए लेखक श्री भदन्त जी के प्रति आभार प्रदर्शित करता है।~~

यह लिखना भी अप्रासंगिक और अनुचित न होगा कि इस पुस्तक के लिखने में लेखक की बड़ी लड़की कुमारी कमला शर्मा ने योग न दिया होता तो यह पुस्तक लिखी ही नहीं जा सकती थी।

— श्रीराम शर्मा

फाल्गुन शुक्ला १५ संवत् २०१८
(होलिकादहन)

20-3-१९६२

बल्का बस्ती,
आगरा

भूमिका (INTRODUCTION)

भारत के जंगली जानवरों का भविष्य ठीक वैसा ही है जैसा कि अन्य देशों के जंगली जानवरों का । अफ्रीका जैसे महाद्वीप के अनेक जानवरों के विषय में यह आशंका प्रगट की जारही है कि यदि वर्तमान गति से उनका संहार जारी रहा तो उनका अस्तित्व ही मिट जावेगा । अफ्रीका के सफेद गैंडे की संख्या बहुत कम रह गई है और यही दशा विश्व के अन्य देशों के जंगली जानवरों की है । योरुप के कई देशों से जंगली सुअर गायब ही हो गया । जंगली जानवरों के विषय में भी ,यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे,- वाली बात लागू है । जंगली जानवरों का जो संहार शिकार की खातिर शौक की खातिर और खेती की खातिर हो रहा है उस पर विशेषज्ञों को ही नहीं प्रकृति प्रेमियों और मानव समाज के हित रक्षकों को ध्यान देना चाहिये ।

जंगली जानवरों के विनाश और लोप होने के अनेक कारण हैं उनमें से एक कारण है मनुष्यों की बढ़ती संख्या । बढ़ती जनसंख्या की विषम समस्याओं को समझने के लिये यदि हम अपने ही देश की समस्याओं पर विचार करें तो हम इस समस्या के भावी रूप को अच्छा तरह समझ सकते हैं । भारत विभाजन के समय भारत की जन संख्या ४० करोड़ थी और विभाजन के बाद पाकिस्तान बन जाने पर हमारे देश की आबादी ३६ करोड़ रह गई थी पर सन् १९६१ में अकेले भारत की आबादी ४३ करोड़ हो गई । सन् १९०१ में भारत की भारत की आबादी २३ करोड़ थी । यह आबादी अखंड भारत की थी । अनुमानतः अकेले भारत की जनसंख्या में प्रति वर्ष ७०-८०लाख की वृद्धि हो जाती है । रोगों के उपचार और रोग निवारण के लिये वैज्ञानिक विकास के कारण मृत्यु संख्या भी घट गई है और घटनी भी चाहिये । इस प्रकार सन् १९८० के लगभग भारत की आबादी ८० करोड़ तक हो सकती है । चीन की जनसंख्या में जो वृद्धि हुई रही है उससे तो विश्व शांति को खतरा पैदा हो गया है । यदि ठीक ढंग से इस समस्या को नहीं लिया गया तो फिर हमारी ही नहीं, विश्व की भी खैर नहीं । उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में जाकर देखिये, गावों में पहुंचने के लिये मार्ग तक नहीं रहे, पेड़ कटते चले जा रहे हैं बिहार और बंगाल की भी यही हालत है । दुधारू पशुओं की संख्या कम हो गई है , जंगली पशु मिट रहे हैं । इस विषय में स्वास्थ्य विज्ञान के विश्व विख्यात विशेषज्ञ श्री हर्मन बेटीने लिवरपुल (इंगलैंड) में स्वास्थ्य कांग्रेस की रायल सोसाइटी के तत्वावधान में एक वक्तव्य पढ़ा । डा० हर्मन बेटी के मत से -

आगामी सन् २०५० में अर्थात आज से ९० वर्ष बाद संसार की हालत

----६

महाप्रलय से भी खराब हो जायगी । उस समय दुनिया की आबादी ६ अरब तक जा पहुंचेगी और न तब धरती पर इतने लोगों के लिये खाना मिल सकेगा, न स्वच्छ व शुद्ध जलवायु और न बिजली ही मिल सकेगी । लोगों के रहने के लिये जो मकान मिलेगा उसमें बस उनके खड़े होने भर की जगह रहा करेगी ।

किसी भी घर में किसी भी किस्म का पालतू जानवर न मिल सकेगा । कारण ये जानवर इंसानों की खुराक बहुत खाते हैं, इसलिये लोग इन्हें ही पट कर जायेंगे । पशुओं के न रहने से उनके मांस, दूध तथा चर्बी ने न मिलने से लोग उसके स्थान पर खास तरह की आहार की गोलियां खाया करेंगे ।

पाठकों को उपर्युक्त वर्णन में अतिशयोक्ति प्रतीत होगी पर चीन में आजकल कोई भी व्यक्ति कानूनन कुत्ते और बिल्लियां नहीं पाल सकता क्योंकि वे मनुष्य के भोजन में साझीदार बन जाते हैं । जापान में घनी आबादी के कारण ट्रैक्टर तो क्या बैलों से भी खेती संभव नहीं। आदमी खुरपी और कुदाल से खेती करते हैं और वहां पर खाद्यान्न का उत्पादन भारत से कई गुना अधिक है । हमारे देश में खेती के उचित चरीकों और खाद्यान्न की समस्या पर संतुलित और वैज्ञानिक विचार नहीं हैं ।

स्वास्थ्य विज्ञान के विशेषज्ञ श्री हर्मन बेरी के कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है । यदि हम भारत के गत ५० वर्षों के इतिहास पर जंगली जीवों खाद्यान्न समस्या और बढ़ती आबादी की दृष्टि से दृष्टिपात करें तो हमें श्री हर्मन बेरी के परिणामों पर ही आना पड़ेगा । आज हमारे देश से जंगली भैंस गैंडा, चीता, समुद्रतटवर्ती कच्छ के बालुकमयी वनों से जंगली गधा, हिमबाघ और कस्तूरा क्यों लोप के बिन्दु पर पहुंच गये हैं? अनुचित ढंग से खेती करने के कारण जंगलों और झाड़ियों को बुरी तरह काटा गया है तथा जानवरों के सुरक्षित स्थानों को इस प्रकार नष्ट कर दिया गया है । मांस चर्बी और खाल के लालच में जंगली जानवरों को इतनी बुरी तरह मारा गया है कि उनका अप्राप्य स्वाभाविक ही है । अतः मनुष्यों की नासमझी के कारण भारत के अनेक जंगली जीव विनाश के पथ पर हैं । योजनायें बनाते समय केवल मनुष्य के पेट भरने का ही सवाल सामने रखा गया और इस प्रकार वन की विभूतियां-जंगली जीव- नष्ट हो ही जायेंगे । उत्तर प्रदेश की तराई का क्षेत्र जंगली जानवरों के लिये विश्व विख्यात है । तराई

हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच स्पंज का काम करती थी । हिमालय के पानी को वह सोखती थी और बदले में घास और जंगलों का बाहुल्य प्रदान करती थी जहां शेर, चीता तथा विभिन्न हिरनों का स्वर्ग बना रहता था । तराई के जंगल काट कर खेती करना फिल हाल भले ही लाभप्रद दिखाई पड़ता हो पर दूरदर्शिता से वह नीति हानिकारण होगी । कुछ ही वर्षों बाद तराई की जमीन खेती के योग्य नहीं रहेगी क्योंकि जमीन में अमलता आने की पूरी आशंका है । साथ ही मैदानी क्षेत्रों के पेड़ कट जाने से ईंधन का और अभाव हो गया है । जो गोबर खाद के रूप में खेतों में जाना चाहिये वह ईंधन के काम में लाया जाता है । बाढ़ों के प्रकोप का एक कारण मनुष्य निर्मित है । जंगलकाट देने से विशेषकर नदियों के किनारे के पेड़ काट देने से बाढ़ और जमीन की कटन की विकराल समस्यायें सामने आयी हैं । हिमालय के जंगल को भी बुरी तरह काट डाले गये हैं और हिमालय से निकलने वाली नदियां हिमालय की उर्वरा भूमि को काटकर नदियों की तलहटी को भर रही है । सम्पन्न और शक्तिशाली देशों का एक भाषण्ड है कि वहां के तीस प्रतिशत भूभाग पर जंगल और पेड़ होने चाहिये । पर हमारे देश में वास्तव लगभग चौदह प्रतिशत ही पेड़ हैं और मैदानी क्षेत्रों में तो जंगल लगभग चार प्रतिशत ही हैं । यदि कृषि के साथ कृषि उपयोगी पेड़ लगाये जाय और वनों का विकास किया जाय तो साधारण की स्थिति भी संभल जाय और भारतीय वनों के गौरव अनेक जंगली जानवरों को जीवन दान भी मिल जाय ।

यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि सन् १९१२ के जंगली जानवर और पक्षियों के संरक्षण संबन्धी कानून (The wild Birds and Animals Protection Act 1912) के कारण तथा अंग्रेजी शासन कालीन राजाओं और महाराजाओं के सहयोग से जंगली जानवरों और अनेक मूल्यवान पक्षियों को सुरक्षा मिल सकी तथापि यह काम १९३० तक सुचारू रूप से चलता रहा । पर गत द्वितीय महायुद्ध के बाद जंगली जानवरों की संरक्षण नीति में आकस्मिक परिवर्तन होगया । फाड़ियों और जंगलों के बुरी तरह कटने से जंगली चीता तो लोप ही होगया तथा भारत में वह जंगली स्थिति में नहीं पाया जाता । जल प्रपातों और बांधों से बिजलीघर बनाने की गतिविधि और जंगल काट कर खेत करने की होड़ से जंगली जानवरों का विनाश हो रहा है और उचित सुरक्षा के अभाव में अनेक अल्प पशु भी

----८

चीते की गति को ही प्राप्त होंगे । यह ठीक है कि गैर कानूनी ढंग के शिकार और शिकार संबन्धी अपर्याप्त कानूनों के कारण जंगली जानवरों का काफी विनाश होता है और यह बहुत कुछ रोका भी जा सकता है । मांसाहारी कबीलों से शिकार के कारण जो क्षति जानवरों को होती है वह इतनी नहीं है जितनी जंगल काटकर अव्यवस्थित खेती करने से होती है । चोरी छिपे शिकार खेलना और शिकार सम्बन्धी अपर्याप्त कानूनों का उपाय तो जल्दी हो सकता है पर राष्ट्रीय योजना जन्य बांधों और विशाल जलाशयों के बांधोंके निर्माण का कार्य तो राज्यों द्वारा ही होता है तथा इनके निर्माण के कार्य से जंगली जानवरों के नैसर्गिक स्थान पानी में डूब जाते हैं । इस प्रकार की योजना बनाने में जंगली जानवरों का खयाल रखना बहुत आवश्यक है । कोई भी व्यक्ति विशाल बांध निर्माण करके उद्योगों के पनपाने का विरोधी नहीं हो सकता । मनुष्यों की खातिर बहुत कुछ जानवरों का विनाश भी संभव है पर इनका उन्मूलन मनुष्य के लिये भी खतरनाक है और ऐसी स्थिति मनुष्य के लिये अशोभन है । ऐसी योजनाओं में मनुष्य के हित की खातिर जंगली जानवरों को भी उचित सुरक्षा मिलनी चाहिये । उदाहरण के लिये उड़ीसा का हीराकुण्ड बांध भारत की एक शान है पर हीराकुंड बांध से लगे ४२ मील क्षेत्र में शताब्दियों का लगा जंगल नष्ट हो गया तो जंगली जानवर खतम ही हो गये होंगे । ऊपर उत्तर प्रदेश के विश्वविख्यात तराई क्षेत्र की चर्चा की गई है वहां १९४० तक प्रत्येक प्रकार के जानवरों का बाहुल्य था, इतना बाहुल्य कि वहां का जंगल कट जाने पर भी वहां के ईख के खेतों में कभी कभी शेरों का जोड़ा पाया जाता है । उनके रहने को जंगल नहीं है और ईख के खेतों में रहकर शेरों के दो चार जोड़े सुअर और चीतलों पर अपना निर्वाह करते हैं । कुमायुं में रामगंगा का जो बांध बांधा जा रहा है उससे पूरी आशंका है कि वहां के जंगली जानवरों के नैसर्गिक निवास क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग जलमग्न हो जायगा और वहां से शेर बघेरा तथा हिरनों का लोप हो जाना तो संभव ही है । अन्य स्थानों पर इन पशुओं को संरक्षण मिलना जंगलों की कमी के कारण असंभव ही है । मैसूर शहर से ५० मील की दूरी पर कक्कणकोट का जो जंगल बन है वह हाथियों का परम क्रीड़ा स्थल है पर काबिनी नदी पर बांध बंधने से उसका बहुत बड़ा भूभाग जलमग्न हो जायगा । कक्कनकोट में खेदा से जो हाथी पकड़े जाते थे उसके विषय में अंग्रेजी में बड़ा ही आकर्षक साहित्य है।

बांस और हाथी जीवन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । यदि बांसों का यह जंगल नष्ट हो गया तो बेशुर को एक विभूति नष्ट हो जायेगी । उद्योग, पानी और बिजली मिलने के साथ साथ यदि बांस का बना रहे तो जंगली हाथी की भी रक्षा हो सकेगी । तात्पर्य यह है कि बांध निर्माण योजनाओं और कृषि विकास योजनाओं में अन्य तथा जंगली जानवरों की रक्षा में नहीं ध्यान नहीं दिया जाता । यदि इन योजनाओं के विशेषज्ञों का विभाग के कर्मठ कार्यकर्ताओं और जंगलि जीवन के विशेषज्ञों का मत लिया जाय और उनके सहयोग से योजनायें बनें तो उद्योग धन्धे भी चल सकते हैं और जंगली जानवरों की रक्षा भी हो सकती है । उद्योगों और धन्धों की खातिर बांध बनने चाहिये, बिजली की उपलब्धि भी होनी चाहिये । पर इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि बेकार जमीनों में जलाशय बन सकें तथा जंगली जानवरों के लिये सुरक्षित स्थानों की रक्षा हो सके तो मनुष्यों का और भी अधिक हित होगा ।

भारत में वास्तव जानवरों के लिये जो सुरक्षित क्षेत्र हैं अर्थात वे स्थान जहां शिकार खेलना वर्जित है वहां चोरी छिपे बेहद शिकार खेला जाता है । उसकी रोकथाम परमावश्यक है । भारतीय गैंडे के लोप होजाने की बड़ी भारी आशंका है । एक समय था जब भारत के उत्तर पश्चिम से लगा कर इंडोचीन तक भारतीय गैंडा पाया जाता था । बाबर ने सिन्धु नदी के तट पर गैंडे का शिकार खेला था । पर अब भारतीय गैंडा नेपाल के चितावन जंगल और पश्चिमी बंगाल के उत्तरी जंगलों तथा असम के एक अति सीमित क्षेत्र में अतिपय गैंडों को संरक्षण प्राप्त है । असम के काजरिंगा क्षेत्र में लगभग ३०० गैंडे जीवित सुरक्षित बताये जाते हैं । गैंडे को मारने का एक कारण यह है कि उसके सींग के को प्याले में यह अद्भुत शक्ति बताई जाती है कि उसमें जहर मिली कोई चीज रखने से जहर का पता चल जाता है इसके अतिरिक्त सींग का बुरादा मूल्यवान दवाइयों के काम आता है । वर्तमान औद्योगिकरण युग में गैंडे के सींग का मूल्य बहुत अधिक है । गत वर्ष असम के नौगाव क्षेत्र के १३ सुरक्षित गैंडों में से सबसे बड़ा नर गैंडा मरा पाया गया और उसकी लाश से उसका सींग गायब था । उसके हृदय में गोली लगी थी । कलकत्ते के बाजार में उस गैंडे के सींग का मूल्य दस हजार रुपये से कम न होता । ऐसी दशा में भारतीय गैंडे को बचाने के लिये जंगली जानवरों के सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों में परिवर्तन करके कड़ाई से पालन करना होगा । भारत से लोप होनेवाले ऐसे पशुओं की मारनेवाले को मृत्युदंड नहीं तो कालापानी या भारी दंड की व्यवस्था करनी होगी और देखभाल का भी समुचित प्रबन्ध करना होगा ।

भारतीय जंगली भैंसा भी एक ऐसा जानवर है जो कदाचित अपने अन्तिम दिन गिन रहा है । अब से ३५ ही वर्ष पूर्व वह मध्य प्रदेश में काफी संख्या में पायी जाती थी । पर अब उसकी संख्या घट गई है और असम मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के एक सीमित क्षेत्र में ही पाई जाती जंगली भैंसे के रहने का स्थान आदमियों की आबादी का नहीं है और न वह जंगलों में जाती है वह तो दलदल तथा घास वाले क्षेत्रों में ही रहती है । कृषि क्षेत्रों के जन प्रसार आन्दोलन में वह एक प्रकार से धकेल कर एक समुचित क्षेत्र में पहुंचा दी गई है, यही गति रही तो उसका सफाया भी निश्चित है । मांसाहारियों के लिये भैंसे से मांस मिलता था और उद्योग धन्धों के लिये चमड़ा, सींग आदि । भारतीय जंगलों को एक और विभूति भारतीय वनों के खत्म होने की आशंका है । दक्षिण की सह्याद्रि पहाड़ियों का वह शिरमौर है । विशालकाय इतना कि शेर से भी वह सहज नहीं मारा जा सकता । भारी इतना कि उसके शव का मूल्य मांस के रूप में दो सौ पचास रुपया प्रति जानवर होता है । अब जो वहां पर बांध आदि की बहुउपयोगी योजना बन रही है उसमें उसके खतम होने की आशंका है ।

भारतीय जंगली चीता झाड़ियों में रहने वाला पशु है । दक्षिण और मध्य प्रदेश में वह बहुतायत से पाया जाता था । घने जंगलों में वह रहता नहीं है और कृषि प्रसार के लिये झाड़ियां काट डाली गईं तो नासमझ शिकारियों की गोली से वह मारा गया । वर्षों की जिज्ञासा और खोज के बाद भी भारतीय जंगली चीता किसी भी झाड़ी में नहीं मिला । गत १९५२ में ही वह प्राकृतिक अवस्था में अंतिम बार देखा गया था ।

शेर तथा- भारतीय सिंह- या गीरसिंह की संख्या भी सीमित है जो अनुमानतः ३०० होगी । वर्षों से उन्हें संरक्षण प्राप्त है इसीलिये वे अभी इतनी संख्या में हैं । हिरनों और सूअरों की संख्या भी घट गई है इसलिये सिंहों की प्राकृतिक खुराक कम हो गई है तिस पर ना समझ फैशनेबुल शिकारी अपने शिकार की संख्या बढ़ाने के लिये जहां कहीं सिंह मिलते हैं उन्हें भून डालते हैं ।

कच्छ की छोटी-छोटी झाड़ियों- के जंगली इलाकों में भारतीय जंगली गधा सिमट सिकुड़ कर आ गया है । पर ये झाड़ियां भी उपजाऊ बनाई जा रही हैं तथा मारे जा रही हैं । अतः पूरी आशंका है कि भारतीय जंगली गधा भी चीते की गति को प्राप्त होगा । बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मस्तक और हिरन सींग के विषय में सन् १९५१ में रिपोर्ट लिख दी गई थी कि वह खतम हो चुका है लगभग ३-४ की टोली

में मनीपुर में पाया गया । भारत सरकार ने फौरन संरक्षण दिया और सुरक्षित किया गया अनुमानतः उनकी संख्या अब सौ के करीब हो गई है।

कस्तूरा तो इनी गिनी संख्या में ही कश्मीर में पाया जाता है और गढ़वाल, कुमायूं तथा हिमांचल प्रदेश से तो वह लुप्त सा ही हो गया है । इस बात का ठीक पता भी नहीं कि वह अब गढ़वाल कुमायू, हिमाचल प्रदेश में है भी या नहीं । कस्तूरी की खातिर इस छोटे तथा सुन्दर हिरन को बुरी तरह मारा गया । शुद्ध कस्तूरी के एक एक नाफे का मूल्य ४००-५०० रुपये तक होता है और इस लालच के कारण चोरी छिपे लोगों ने उसे मार कर पैसे कमाये । हिमबाघ भी अपने अंतिम दिन गिन रहा है स पंजाब का सुरियल हिरन और कश्मीर के मार खोर को भी बुरी दया है, मैदानी इलाकों के काले हिरन और चिकारे भी तेजी से कम हो गये हैं । सांभर और चीतल भी बुरी तरह घट रहे हैं । गौंड भी बुरी तरह मारा गया और वह विनाश के पथ पर है ।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह संभव है कि भारत के वनों की इन विभूतियों को किसी प्रकार बचाया जा सके । वीर भोग्या वसुन्धरा वाली बात आंशिक रूप से इन अर्थों में ठीक है कि मनुष्य अपनी बुद्धि, वीरता और श्रम से धरती माता के भोग भोगता है । पर यह बात भी निर्विवाद सत्य है कि बिना पशुओं के संतुलित मानव जीवन संभव नहीं । बढ़ते उद्योगों और कृषि प्रसार की योजनाओं के सामने क्या हमारे अद्भुत जंगली जानवर बच सकेंगे । लेखक का मत है कि भारत के जंगली जानवर भी बच सकते हैं और भारतवासी अबसे अच्छा संतुलित भोजन प्राप्त कर सकते हैं यदि जंगली जानवरों की उपयोगिता पर प्रत्येक दृष्टि से ख्याल किया जाय और उनके संरक्षण के लिये कारगत तथा उचित कदम उठाये जायं । सन् १९१२ में हमारे यहां जंगली पक्षियों और जंगली जानवरों की रक्षा के लिये

बना और सन् १९५२ में भारत के वन्य जीवन के लिये एक बोर्ड ( )बना । पर इन सबके होने पर भी जंगली जानवरों के संरक्षण के लिये संतोषजनक कार्य नहीं हुआ । आवश्यकता इस बात की है कि सन् १९१२ के कानून में संशोधन किया जाय और उस कानून को भंग करने वालों के लिये उसमें कठोरतम दंड की व्यवस्था हो । उस कानून भंग के मुकदमों की अपील की गुंजाइश नहीं होनी चाहिये और सैनिक न्यायालय की भांति अभियुक्तों पर मुकदमा चलाना चाहिये । उस कानून के विषय में लोगों को बहुत कम जानकारी है इसलिये भारतवर्ष के प्रत्येक जिले में जिलाधीश के तत्वावधान में उसका प्रचार किया जाय । पुलिस कर्मचारियों और वन विभाग के कर्मचारियों को उससे अवगत कराया जाय और भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में उसकी चर्चा की जाय ।

----१२

सन् १९५२ में जिस बोर्ड की स्थापना हुई है वह एक प्रकार से परामर्श देने के लिये है उसे स्टैचूटरी बोर्ड बना दिया जाय जिसके सभापति प्रधान मंत्री हों और सदस्यों में प्रत्येक राज्य से कुछ योग्य जानकार गैर सरकारी व्यक्ति हों । इस बोर्ड की बैठक नई दिल्ली में वर्ष में दो बार हो । प्रत्येक राज्य में भी इस प्रकार का बोर्ड बने और उस बोर्ड का सभापति उस राज्य का मुख्य मंत्री हो । राज्य के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष उसके सदस्य हों । बिजली, सिंचाई, कृषि, वन और पशुपालन विभाग के सदस्य तो उसमें अवश्य ही होने चाहिये । चार पांच या आवश्यकता के अनुसार प्रति कमिश्नरी को एक प्रतिनिधि उस बोर्ड का सदस्य हो । केन्द्र और राज्यों के गैर सरकारी सदस्यों की नाम जदगी राज्यपालों की ओर से कमिश्नरों की सिफारिश होनी चाहिये । और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केवल वे ही आदमी नामजद किये जाय जो इस विषय के जानकार हों और उसमें दिलचस्पी रखते हों। केन्द्रीय बोर्ड का यहां भी कार्य होना चाहिये कि वर्ष में दो प्रामाणिक सचित्र पुस्तकें भारत के जंगली जीवों पर अवश्य प्रकाशित हों और उनका म प्रकाशन केन्द्रिय सरकार द्वारा ही होना चाहिये । इस कार्यों के लिये खोज और शोध की आवश्यकता होगी इसलिये उस कार्य के लिये प्रति पुस्तक कुछ खर्च भी करना पड़े तो मेरा ख्याल है होगा क्योंकि इस प्रकार की पुस्तकें बड़ी ही चाकप्रिय होंगी । गैंडा, चीतल, सांभर, कस्तूरा, हिमबाघ, चीता, घड़ियाल, महाशेर मछली, मारखोर, असा हाथी, शेर और बघेर पर सचित्र और प्रामाणिक पुस्तकों की बड़ी ही आवश्यकता है तथा इस कार्य का आरम्भ भी जल्दी ही ना चाहिये ।

प्रत्येक राज्य में राज्य के सीमा विस्तार और आवश्यकतानुसार जंगली जानवरों के लिये सुरक्षित स्थान ( ) बनने चाहिये । उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश के उत्तरी गढ़वाल क्षेत्र में तिब्बती सीमा से कुश कल्याण तक कस्तूरा के लिये सुरक्षित स्थान होना चाहिये । आगरे जिले में कीथम झील के आसपास काले हिरन और चिकारे के लिये सुरक्षित स्थान होने चाहिये । पंजाब का हिसार फार्म और उसका निकटवर्ती क्षेत्र चिकारे और काले हिरन के लिये सुरक्षित होना चाहिये । कच्छ की छोटी खाड़ियों में भारतीय जंगली गधे को सुरक्षित कर देना चाहिये । राजस्थान मध्यप्रदेश और दक्षिण में चीते और हिरनों के लिये सुरक्षित स्थान होने चाहिये । मैसूर में अरने और हाथियों के लिये भी सुरक्षित स्थान की आवश्यकता है । जंगली भैंस के लिये मध्यप्रदेश उड़ीसा और असम के क्षेत्र में स्थान विशेष सुरक्षित कर दिये जाय। बिहार में हजारीबाग के आसपास

और उत्तर प्रदेश में ऋषिकेश घोलखंड या तराई के पास खेरी के जंगलों में शेर को संरक्षण मिलना चाहिये । सुझाव के तौर पर यह बात लिख दी गई है । यों गीरसिंह और गैंडे के लिये स्थान सुरक्षित है पर उनके संरक्षण की व्यवस्था और भी अच्छी कर देनी चाहिये । मोटर और यातायात के साधन उन स्थानों में पहुंचने के लिये सुलभ नहीं होने चाहिये । मुनाल पक्षी को भी हिमालय क्षेत्र में संरक्षण की आवश्यकता है । कानवाला ( ) उल्लू का संरक्षण भी बहुत आवश्यक है । पर किस पक्षी और किस जानवर का संरक्षण कहां पर और किस प्रकार हो उसके लिये जंगली जीवों सम्बन्धी बोर्ड की मीटिंग में तय होना चाहिये ।

पर उपर्युक्त सुझावों से भी महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि हमारे शिक्षा विभाग को भी जंगली जानवरों के संरक्षण में योग देना चाहिये । कालेजों जो लगाकर देहाती स्कूलों तक में इस कार्य के लिये समितियां हों और संरक्षण बैज और तमगे एक एक आने की कीमत पर लोगों में बंटने चाहिये जिसे विद्यार्थी और अध्यापक बड़ी शान से अपने कपड़ों पर लगायें और शपथ का पालन करें। संरक्षण शपथ में वृक्षसंरक्षण ( ) जल संरक्षण और जंगली जानवरों का संरक्षण निहित है । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस दिशा में काफी अच्छा काम हो रहा है । शिकार और संरक्षण के लिये वहां पर कारगर और उपयोगी नियम हैं जिनका अधिकांश लोग पालन करते हैं, फलस्वरूप वहां बनों का संरक्षण है, जंगली जानवरों का भी संरक्षण है । अमरीका में संरक्षण की खातिर विदेशों से उपयोगी पक्षी लाकर छोड़े गये हैं । भारत से हजारों ही काले और धूरे तीतर और चकोर अमरीकी जंगलों में छोड़े गये हैं जहां वे अच्छी उन्नति भी कर रहे हैं । यह कार्य केवल सरकारी कर्मचारियों के ही करने का नहीं है वरन प्रत्येक देश वासी को करने का है कि संरक्षण कार्य में योग दें और केन्द्रिय सरकार तथा राज्यों की सरकारें इस आवश्यक कार्य में केवल रुचि ही नहीं वरन सक्रिय कदम उठायें ताकि देश की संतुलित और चतुर्मुखी समृद्धि हो सके ।

श्रीराम शर्मा

भूमिका

भारत के जंगली जानवरों का भविष्य ठीक वैसा ही है जैसा कि अन्य देशों के जंगली जानवरों का। अफ्रीका जैसे महाद्वीप के अनेक जानवरों के विषय में यह आशंका प्रकट की जा रही है कि यदि वर्तमान गति से उनका संहार होता रहा तो उनका अस्तित्व ही मिट जायगा। अफ्रीका के सफेद गैंडे की संख्या बहुत कम रह गई है और यही दशा विश्व के अन्य देशों के जंगली जानवरों की है। योरोप के कई देशों से जंगली सुअर मिट चुका है। जंगली जानवरों के विषय में भी 'मत्स्य न्याय' वाली बात लागू है। जंगली जानवरों का जो संहार शिकार की स्वतंत्रता, शौक की स्वतंत्रता और खेती की रक्षा की स्वतंत्रता हो रहा है उस पर विशेषज्ञों को ही नहीं, प्रकृति प्रेमियों और मानव समाज के हित रक्षकों को ध्यान देना चाहिए।

जंगली जानवरों के विनाश और लोप होने के अनेक कारण हैं उनमें से एक मुख्य कारण है मनुष्यों की बढ़ती संख्या।

बढ़ती जनसंख्याकी विषम समस्याओंको समझनेके लिये यदि हम अपने ही देशकी जन संख्या संबंधी समस्याओं पर विचार करें तो हम इस समस्याके भावी रूप को अच्छी तरह समझ सकते हैं। भारत विभाजनके समय भारतकी जन संख्या ४० करोड़ थी और विभाजनके बाद पाकिस्तान बन जाने पर हमारे देशकी आबादी ३६ करोड़ रह गई थी। पर सन् १९३१ में अकेले भारतकी आबादी ४४ करोड़ से अधिक हो गई। सन् १९०१ में भारतकी आबादी २३ करोड़ थी। यह आबादी अखंड भारतकी थी। अनुमानतः अकेले भारतकी जनसंख्यामें प्रति वर्ष लगभग ७०-७५ लाखकी वृद्धि हो जाती है। रोगोंके उपचार और रोग निवारणके लिए वैज्ञानिक विकासके कारण मृत्यु संख्या भी घट गई है और घटनी भी चाहिए। इस प्रकार सन् १९८० के लगभग भारतकी आबादीकी अनुमानतः ८० करोड़ तक हो जानेकी संभावना है। चीनकी जनसंख्यामें जो वृद्धि हो रही है उससे तो विश्व शांतिको खतरा पैदा हो गया है। यदि ठीक ढंगसे इस समस्याको नहीं लिया गया तो भविष्य हल नहीं हैं निराशाजनक नजर आता है।

बढ़ती जनसंख्या हमारी ही नहीं, विश्वकी भी खैर नहीं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलोंमें जाकर देखिये, गांवोंमें पहुँचनेके लिये मार्ग तक नहीं रहे, पेड़ कटे चले जा रहे हैं। बिहार और बंगालकी भी यही हालत है। दुधारू पशुओंकी संख्या कम हो गई है, जंगली पशु मिट रहे हैं। इस विषयमें स्वास्थ्य विज्ञानके विश्व विख्यात विशेषज्ञ श्री हर्मन बेटीने ब्लेकपूल (इंग्लैंड) में १९६१ के स्वास्थ्य कांग्रेसकी रायल सोसाइटीके तत्वावधानमें एक वक्तव्य पढ़ा। डा० हर्मन बेटीके मतसे—

"आगामी सन् २०५० में अर्थात् अबसे ९० वर्ष बाद संसारकी हालत महाप्रलयसे भी खराब हो जाएगी। उस

समय दुनियाकी आबादी ९ अरब तक जा पहुंचेगी और न तब धरती पर इतने लोगोंके लिए खाना मिल सकेगा, और न स्वच्छ व शुद्ध वायु, न पानी और न बिजली ही मिल सकेंगे। लोगोंके रहनेके लिये जो मकान मिलेंगे उसमें बस उनके खड़े होने भरकी जगह रहा करेगी।

किसी भी घरमें किसी भी किस्मका पालतू जानवर न मिल सकेगा। कारण ये जानवर इंसानोंकी खुराक बहुत खाते हैं, इसलिये लोग इन्हें ही चट कर जायेंगे। पशुओंके न रहनेसे उनके मांस, दूध तथा चर्बीके न मिलनेसे लोग उसके स्थान पर खास तरह की आहारकी गोलियां खाया करेंगे।

पाठकोंको उपर्युक्त वर्णनमें अतिशयोक्ति प्रतीत होगी पर चीनमें आजकल कोई भी व्यक्ति कानून कुत्ते और बिल्लियां नहीं पाल सकता क्योंकि वे मनुष्यके भोजनमें साझीदार बन जाते हैं। जापानमें घनी आबादीके कारण ट्रैक्टर तो क्या बैलोंसे भी खेती सम्भव नहीं। आदमी खुरपी और कुदालसे खेती करते हैं और वहां पर खाद्यान्नका उत्पादन प्रति एकड़ भारतसे कई गुना अधिक है। हमारे देशमें खेतीके उचित तरीकों और खाद्यान्नकी समस्या पर संतुलित और वैज्ञानिक विचार नहीं है।

स्वास्थ्य विज्ञान के विशेषज्ञ श्री हर्मेन बेटी के कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यदि हम भारत के गत ५० वर्षों के इतिहास पर जंगली जीवों, खाद्यान्न समस्या और बढ़ती आबादी की दृष्टि से दृष्टिपात करें तो हम श्री हर्मेन बेटी के परिणामों पर ही पहुंचेंगे। आज हमारे देश से जंगली भैंस गैंडा चीता, समुद्रतटवर्ती कच्छ के बालुकमयी रनों से जंगली गधा पर्वतों से हिमबाघ और कस्तूरा क्यों लोप के बिन्दु पर पहुंच गए हैं? अनुचित ढंग से खेती करने के कारण जंगलों और झाड़ियों को बुरी तरह काटा गया है तथा जानवरों के सुरक्षित स्थानों को नष्ट कर दिया गया है। मांस, चर्बी और खाल के लालच में जंगली जानवरों को इतनी बुरी तरह संहार किया गया है कि उनका प्राप्य होना दुर्लभ ही है। अतः मनुष्यों की नासमझी के कारण भारत के अनेक जंगली जीव विनाश के पथ पर हैं। योजनायें बनाते समय केवल मनुष्य के पेट भरने का ही सवाल सामने रखा गया जाता है और इस प्रकार वन की विभूतियाँ — जंगली जीव — नष्ट हो ही जायेंगी। उत्तर प्रदेश की तराई का क्षेत्र जंगली जानवरों के लिए विश्व विख्यात है। तराई, हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच स्पंज का काम करती थी। हिमालय के पानी को वह सोखती थी और बदले में घास और जंगलों का बाहुल्य प्रदान करती थी जहां शेर, बघेरा तथा विभिन्न हिरनों का स्वर्ग बना रहता था। तराई के जंगल काट कर खेती करना फिलहाल भले ही लाभप्रद दिखाई पड़ता हो पर दूरदर्शिता से वह नीति हानिकारक होगी। कुछ ही वर्षों बाद तराई की जमीन

खेती के योग्य नहीं रहेगी क्योंकि जमीन में अम्लता आने की पूरी आशंका है। साथ ही मैदानी क्षेत्रों के पेड़ कट जाने से ईंधन का घोर अभाव हो गया है। जो गोबर खाद के रूप में खेतों में जाना चाहिए वह ईंधन के काम में लाया जाता है। बाढ़ों के प्रकोप का एक कारण मनुष्य निर्मित है। ~~विशेषकर~~ जंगल काट देने से विशेषकर नदियों के किनारे के पेड़ काट देने से बाढ़ और जमीन की कटन की विकराल समस्यायें सामने आ गई हैं। हिमालय के जंगल भी बुरी तरह काट डाले गए हैं और हिमालय से निकलने वाली नदियां हिमालय की उर्वरा भूमि को काट कर नदियों की तलहटी को भर रही हैं। सम्पन्न और शक्तिशाली देशों का एक मापदंड है कि वहां ~~पर~~ के तीस प्रतिशत भूभाग पर जंगल और पेड़ होने चाहिए। पर हमारे देश में औसतन लगभग चौदह प्रतिशत भूभाग पर ही पेड़ हैं और मैदानी क्षेत्रों में तो जंगल लगभग चार प्रतिशत ही हैं। यदि कृषि के साथ कृषि उपयोगी पेड़ लगाये जायें और बनों का विकास किया जाय तो खाद्यान्न की स्थिति भी संभल जाय और भारतीय बनों के गौरव अनेक जंगली जानवरों को जीवन दान भी मिल जाय।

यह बात निःसंकोच रूप से लिखी जाती है कि सन् १९१२ के जंगली जानवर और पक्षियों ~~संबंधी का~~ के संरक्षण संबंधी कानून (The Wild Birds and Animals' Protection Act of 1912) के कारण तथा अंग्रेजी शासन कालीन राजाओं और महाराजाओं के सहयोग से जंगली जानवरों और अनेक मूल्यवान पक्षियों को सुरक्षा मिल सकी तथापि यह काम १९३० तक सुचारु रूप से चलता रहा। पर गत द्वितीय महायुद्ध के बाद जंगली जानवरों की संरक्षण नीति में आकस्मिक परिवर्तन हो गया। झाड़ियों और जंगलों के बुरी तरह करने से जंगली चीता तो लोप ही हो गया और अब ~~तथा~~ भारत में वह ~~जंगली~~ प्राकृतिक स्थिति में नहीं पाया जाता। जल-प्रपातों और बांधों से बिजलीघर बनाने की गतिविधि और जंगल काट कर खेत करने की होड़ से जंगली जानवरों का विनाश हो रहा है और उचित सुरक्षा के अभाव में अनेक अन्य पशु भी चीते की गति को ही प्राप्त होंगे। यह ठीक है कि गैर कानूनी ढंग के शिकार और शिकार संबंधी अपर्याप्त कानूनों के कारण जंगली जानवरों का काफी विनाश होता है ~~और~~ पर यह बहुत कुछ रोका भी जा सकता है। मांसाहारी कबीलों से शिकार के कारण जो हानि जानवरों को होती है वह इतनी नहीं

हैं जितनी जंगली ~~के~~ कट जाने से असंतुलित खेती करने से
होती है। चोरी छिपे शिकार खेलना और शिकार संबंधी अपर्याप्त
कानूनों का उपाय तो जल्दी हो सकता है पर सामूहिक योजनाओं
बाँधों और विशाल जलाशयों के निर्माण का
काम तो राज्यों द्वारा ही होता है तथा इनके निर्माण के
कारण से जंगली जानवरों के नैसर्गिक स्थान पानी में डूब
जाते हैं। इस प्रकार की योजना बनाने में जंगली जानवरों का
ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। कोई भी बाँध
बाँध निर्माण कार्य उद्योगों के लाभ का ही नहीं है।
सकता। मनुष्यों की क्षति बहुत कुछ जानवरों की विनाश की
संभव है पर उनका उन्मूलन मनुष्य के लिए भी क्षतिकारक
है और ऐसी स्थिति मनुष्य के लिए भी
योजनाओं में मनुष्य के हित की भाँति जंगली जानवरों
सुरक्षा को भी उचित सुरक्षा मिलनी चाहिए। उदाहरण के लिए
उड़ीसा का हीराकुंड बाँध भारत की एक शान है पर हीराकुंड बाँध
से लगे १३ मील क्षेत्र में शताब्दियों पुराने लगे जंगल नष्ट हो
गया तो वहाँ के जंगली जानवर एकदम ही हो जायेंगे। ऊपर उल्लेख
के विद्युत्विलास ताई क्षेत्र की चर्चा की गई है वहाँ १९५०
तक प्रत्येक प्रकार के जानवरों का बाहुल्य था, इतना बाहुल्य कि
वहाँ के जंगल कट जाने पर भी बड़ी संख्या में इन क्षेत्रों में खेतों में कभी
कभी दीखे जाते हैं। इनके रहने के लिए जंगल नहीं है
क्यों इन के खेतों में रहकर ही ये अपना भोजन
अपने चीतलों पर अपना निर्वाह करते हैं। कुमायूँ में
रामगंगा पर जो बाँध बाँधा जा रहा है उससे इसी प्रकार की
वहाँ के जंगली जानवरों के नैसर्गिक निवास क्षेत्र का एक
बड़ा भाग जलमग्न हो जायगा और वहाँ से ये वन्य
इनों का लोप हो जाना तो निश्चय ही है। अन्य स्थानों पर
इन पशुओं को संरक्षण मिलना जंगलों की रक्षा के कारण
असंभव ही है। मैसूर शहर से ४० मील की दूरी पर
कबिनी का जो बाँधों का निर्माण बन रहा है वह हाथियों का
प्रमुख क्रीड़ा क्षेत्र है पर कावेरी नदी पर बाँध बँधने से उसका
बहुत बड़ा भूभाग जलमग्न हो जायगा। कर्नाटक में खेदा
से जो हाथी पकड़े जाते थे उसके विषय में अँग्रेजी में बड़ा ही
रोचक साहित्य है। बाँस और हाथी जीवन का बड़ा घनिष्ठ
संबंध है। यदि बाँसों का यह जंगल नष्ट हो गया तो मैसूर
की एक विभूति नष्ट हो जायगी। उद्योग, पानी और बिजली
मिलने के साथ साथ यदि बाँस वन बना रहे तो जंगली

हाथी की भी रक्षा हो सकेगी। तात्पर्य यह है कि बाँध निर्माण योजनाओं और कृषि विकास योजनाओं में बेनां तथा बंगाली जानवरों की रक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि इन योजनाओं के विशेषज्ञ वन विभाग के अधिकारियों और संतुलित जीवन के विशेषज्ञों का मत लिया जाय और उनके सहयोग से योजनाएं बनें तो उद्योग धंधे भी चल सकते हैं और जंगली जानवरों की रक्षा भी हो सकती है। उद्योगों और बिजली की संभावित बाँध बनने चाहिए, बिजली की उपलब्धि भी पर इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बेकार में जलाशय बन सकें तथा जंगली जानवरों के लिए स्थानों की रक्षा हो सके तो मनुष्यों का और भी अधिक हित होगा।

भारत में आजकल जानवरों के लिए जो सुरक्षित क्षेत्र हैं उनमें वे स्थान जहाँ शिकार खेलना वर्जित है वहाँ चोरी छिपे बेहद शिकार खेला जाता है। उसकी रोकथाम अत्यावश्यक है। भारतीय गैंडे के लोप हो जाने की बड़ी भारी आशंका है। एक समय था जब भारत के उत्तर पश्चिम से लगा कर इंडोचीन तक भारतीय गैंडा पाया जाता था। बाबर ने सिंधु नदी के तट पर गैंडे का शिकार खेला था। पर अब भारत नेपाल के चितावन जंगल और पश्चिमी बंगाल के उत्तरी जंगलों तथा असम के एक अति सीमित क्षेत्र में कतिपय गैंडों को संरक्षण प्राप्त है। असम के काज़ीरंगा क्षेत्र में लगभग 300 गैंडे जीवित सुरक्षित बताये जाते हैं। गैंडे को मारने का एक कारण यह है कि उसके सींग के बने प्याले में यह अद्भुत शक्ति बताई जाती है कि उसमें जहरीली कोई चीज़ रखने से ज़हर का पता चल जाता है। इसके अतिरिक्त गैंडे के सींग का चूरा मूल्यवान दवाइयों के काम आता है। वर्त्तमान औद्योगीकरण के युग में गैंडे के सींग का मूल्य बहुत अधिक है। गत १९६१ में असम के नौगाँव क्षेत्र के १३ सुरक्षित गैंडों में से सबसे बड़ा नर गैंडा मरा पाया गया और उसका सींग गायब था। उसके हृदय में गोली लगी थी। काले के बाजार में उस गैंडे के सींग का मूल्य दस हजार से कम न होता। ऐसी दशा में भारतीय गैंडे को बचाने और जंगली जानवरों के सुरक्षित संरक्षित क्षेत्रों में प्रतिवर्ष कई से पालतू करने होंगे और जान से मार देनेवाले ऐसे लोगों को मारनेवालों को मृत्यु दंड नहीं तो कालापानी का दंड की व्यवस्था करनी होगी और देख भाल का भी समुचित प्रबंध करना होगा।

भारतीय जंगली भैंसा भी एक ऐसा जानवर है जो कदाचित अपने अंतिम दिन गिन रहा है। अब से कुछ ही वर्ष पूर्व वह मध्यप्रदेश में काफी संख्या में पायी जाती थी। पर अब इसकी संख्या घट गई है और असम, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा के एक सीमित क्षेत्र में ही पाई जाती है। जंगली भैंस के रहने का स्थान आदमियों की आबादी का नहीं है और न वह जंगलों में जाती है वह तो दलदल तथा घास वाले क्षेत्रों में ही रहती है। बढ़ती खेती के प्रसार आंदोलन में वह एक प्रकार से धकेल कर एक संकुचित क्षेत्र में पहुंचा दी गई है। यही गति रही तो उसका खात्मा भी निश्चित है। मांसाहारियों के लिए भैंस से मांस मिलता था और उद्योग धंधों के लिए चमड़ा, सींग आदि। भारतीय जंगलों की एक और विभूति भारतीय गौर के खतम होने की भी आशंका है। दक्षिण की वाइनाड पहाड़ियों का वह सिरमौर है। विशालकाय वह इतना है कि शेर से भी वह सहज नहीं मारा जा सकता। भारी इतना कि उसके शव का मूल्य मांस के रूप में दो सौ पचास रुपया प्रति जानवर होता है। अब जो वहां पर बांध आदि की बहुउपयोगी योजना बन रही है उसमें उसके खतम होने की आशंका है।

भारतीय जंगली चीता झाड़ियों में रहने वाला पशु है। दक्षिण और मध्यप्रदेश में वह बहुतायत से पाया जाता था। घने जंगलों में वह रहता नहीं है और कृषि प्रसार के लिए झाड़ियां काट डाली गई तो नासमझ शिकारियों की गोली से वह मारा गया। वर्षों की जिज्ञासा और खोज के बाद भी भारतीय जंगली चीता किसी भी क्षेत्र में मिल नहीं मिलता। सन् १९५२ में ही वह प्राकृतिक अवस्था में अंतिम बार देखा गया था।

— भारतीय सिंह — या गीर सिंह की संख्या भी सीमित है जो अनुमानतः ३०० होगी। वर्षों से उन्हें संरक्षण प्राप्त है इसीलिए वे अभी इतनी संख्या में हैं। हिरनों और सांभरों की संख्या भी घट गई है अतः सिंहों की प्राकृतिक खुराक कम हो गई है तिस पर नासमझ फैशनेबुल शिकारी अपने शिकार की संख्या बढ़ाने के लिए जहां कहीं सिंह मिलते हैं उन्हें धुन डालते हैं।

कच्छ की रनों — छोटी खाड़ियों — के दलदली इलाकों में भारतीय जंगली गधा सिमट सिकुड़ कर आ गया है। पर ये छोटी खाड़ियां भी उपजाऊ बनाई जा रही हैं तथा भरी जा रही हैं अतः पूरी आशंका है कि भारतीय जंगली गधा भी चीते की गति को प्राप्त हो गया। बड़ी प्रसन्नता की बात है

१९ अन्तिम गैंडा हिरन जिसके विषय में सन् १९५१ में रिपोर्ट लिख दी गई थी कि वह चतम हो गया है, पुनः 3-४ की टोली में नेपाल में पाया गया। भारत सरकार ने जीवन क्षेत्रों का विस्तार किया और सुरक्षित किया फलस्वरूप उनकी संख्या २५० के करीब हो गई है।

कस्तूरा तो इसी गिनी संख्या में ही भारतीय हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है, जो गढ़वाल, कुमाऊं या हिमांचल प्रदेश से तो वह चतम सा ही हो गया है। गढ़वाल, कुमाऊं, हिमाचल में इस बात का ठीक पता भी नहीं कि वह अब कहीं भी या नहीं। कस्तूरी की चाहि इस छोटे तथा सुंदर हिरन को बुरी तरह मारा गया। अंतर्राष्ट्रीय में इक एक नाफे का मूल्य ४००-५०० रुपये तक होता है और इस लालच के मारे चोरी छिपे लोगों ने उसे मार कर जैसे कलंक हिमवंत भी अपने अंतिम दिन गिन रहा है। पंजाब का चीपल हिरन, कश्मीर के मारखोर कहीं भी बुरी दशा में है। मैदानी इलाकों का काला हिरन अब चिंकारा भी तेजी से कम हो गया है। सांभर, चौसिंगा भी बुरी तरह घट रहे हैं। गौर भी बुरी तरह मारा गया है और वह विनाश के पथ पर है।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह संभव है कि भावी के बच्चों को इन विभूतियों को किसी प्रकार बचाया जा सकता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली बात आंशिक रूप से इन अर्थों में सच है कि मनुष्य अपनी बुद्धि, चतुराई और श्रम से धरती माता को भोगता है। पर यह बात भी उतनी ही सत्य है कि वन्य पशुओं के संतुलित मानव जीवन संभव नहीं। बढ़ते उद्योगों एवं कृषि प्रसार की योजनाओं के सामने क्या हमारे अवशेष जंगली जानवर बच सकेंगे? लेखक का मत है कि भारत के जंगली जानवर भी बच सकते हैं और मानवोपयोगी से अधिक संतुलित भोजन प्राप्त कर सकते हैं यदि जंगली जानवरों का उपयोगितावादी प्रत्येक दृष्टि से ध्यान किया जाय और उनके संरक्षण के लिए कारगर तथा उचित कदम उठाये जायें। सन् १९५२ में हमारे यहां जंगली चिड़ियों तथा जंगली जानवरों के रक्षा के लिए The Wild Birds and Animals' Act बना और सन् १९५२ में भारत के वन्य जीवन के लिए एक बोर्ड (The Indian Board for Wild Life) बना। पर इन सबके होने पर भी जंगली जानवरों के संरक्षण के लिए संतोषजनक कार्य नहीं हुआ। आवश्यकता इस बात की है कि सन् १९५२ के कानून में संशोधन किया जाय और उस कानून को भंग करने वालों के लिए उसमें कठोरतम दंड की व्यवस्था

हो। उस कानून संगत के मुकदमों की सुनवाई नहीं होनी चाहिए और सैनिक न्यायालय की भांति अभियुक्तों पर मुकदमा चलाना चाहिए। उस कानून के विषय में लोगों को बहुत कम जानकारी है इसलिए भारतवर्ष के प्रत्येक जिले में जिलाधीश के तत्वावधान में उसका प्रचार किया जाय। पुलिस कर्मचारियों और माल विभाग के कर्मचारियों को उससे अवगत कराया जाय और भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में उसकी चर्चा की जाय।

सन १९५२ में जिस बोर्ड की स्थापना हुई है वह एक प्रकार से परामर्श देने के लिए है उसे 'सैक्यूरटी बोर्ड' बना दिया जाय जिसके सभापति प्रधान मंत्री हों और सदस्यों में प्रत्येक राज्य से कुछ योग्य जानकार और सरकारी व्यक्ति हों। इस बोर्ड की बैठक नई दिल्ली में वर्ष में दो बार हो। प्रत्येक राज्य में भी इस प्रकार का बोर्ड बने और उस बोर्ड का सभापति उस राज्य का मुख्य मंत्री हो। राज्य के विभिन्न विभागों के [illegible] सदस्य हों। बिजली, सिंचाई, कृषि, वन और [illegible] विभाग के सदस्य तो अवश्य ही होने चाहिए। [illegible] पांच या अधिक अंतर के अनुसार प्रति कमिश्नरी का एक प्रतिनिधि इस बोर्ड का सदस्य हो। [illegible] सदस्यों की नामजदगी राज्यों की कमिश्नरी की सिफारिश से होनी चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल वे ही आदमी नामजद किए जाएं जो इस विषय के जानकार हों और उसमें दिलचस्पी रखते हों। प्रस्तावित बोर्ड का यह भी काम होना चाहिए कि वह वन्य प्राणियों सहित उपयोगी भारत के जंगली जीवों पर अध्ययन अनुसंधान करे और उनका प्रकाशन केन्द्रिय सरकार द्वारा ही होना चाहिए। इस काम के लिए खोज और शोध की आवश्यकता होगी इसलिए उस काम के लिए प्रति वर्ष कुछ धन भी करना पड़े तो वह लाभप्रद ही होगा क्योंकि इस प्रकार की उपयोगी और लोकप्रिय होगी। जैसे, चीतल, सांभर, कस्तूरा हिमबाघ, चीतर, घड़ियाल, महाशीर मछली, मगरमच्छ, [illegible] हाथी, शेर और बघेरे पर संरक्षित और प्राणीरक्षक उपायों की बड़ी ही आवश्यकता है तथा इस कार्य का गांभीर्य समझी ही होना चाहिए।

प्रत्येक राज्य में राज्य के सीमा विस्तार और आवश्यकतानुसार जंगली जानवरों के लिए सुरक्षित स्थान (Sanctuary) बनने चाहिए। उदाहरण के लिए उत्तरप्रदेश के

उत्तरी गढ़वाल क्षेत्र में तिब्बती सीमा से कुछ कस्तूरा मृग के लिए सुरक्षित स्थान होना चाहिए। अल्मोड़ा जिले में कोकस मृग के आसपास काले हिरन और चिंकारे के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। पंजाब का हिसार फार्म और उसका निकटवर्ती क्षेत्र चिंकारे और काले हिरन के लिए सुरक्षित होना चाहिए। कच्छ की घोर झाड़ियों में नीलगाय जंगली गधे को सुरक्षित कर देना चाहिए। राजस्थान, मध्यप्रदेश और दक्षिण में चीते और हिरनों के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। मैसूर में गौर के लिए सुरक्षित स्थान की व्यवस्था की जानी चाहिए। मध्यप्रदेश में जंगली भैंसे के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। सुन्दरवन के क्षेत्र में बाघ के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। यहां मगरमच्छ के पास रहने के लिए भी स्थान होने चाहिए। सुन्दरवन में मधुमक्खियों के लिए भी स्थान होने चाहिए। यहां गौर सिंह और हाथी के लिए सुरक्षित स्थान होने चाहिए। मोर और जंगली मुर्गे के लिए भी सुरक्षित स्थान होने चाहिए। हिमालय क्षेत्र में संरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। काले भालू (Himalayan Black Bear) और हिरन की अन्य जातियों के संरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। पक्षी और किन जानवरों का संरक्षण कहां पर और किस प्रकार हो इसके निश्चय के लिए जीवों संबंधी बोर्ड की मीटिंग में होना चाहिए।

पर उपर्युक्त सुझावों से भी महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि इनके शिक्षा विभाग को भी जंगली जानवरों के संरक्षण में योग देना चाहिए। कालेजों को तथा कस्बों के देहाती स्कूलों तक में इस कार्य के लिए समितियां हों और संरक्षण बैज और तमगे एक एक जाति की खाल पर लोगों में बंटने चाहिए जिसे विद्यार्थी और अध्यापक बड़ी शान से अपने कपड़ों पर लगावें और इसका प्रदर्शन करें। संयुक्त राज्य अमेरिका में मूसंरक्षण (Game Conservation) जन संरक्षण और जंगली जानवरों का संरक्षण निहित है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विद्यालयों में काफी प्रबंध कर दिया है। शिकार और संरक्षण के लिए वहां पर कागज और उपयोगी नियम हैं जिनका अधिकांश लोग पालन करते हैं। [illegible] का संरक्षण है। जंगली जानवरों का भी संरक्षण है। अमेरिका में संरक्षण की व्यवस्था [illegible] देशों से अच्छी पद्धति काम में लाई जाती है। [illegible]

भारत से हजारों ही काले और भूरे तीतर तथा चकोर अमरीकी जंगलों में छोड़े गए हैं जहाँ वे बहुत अच्छी तरह पनप रहे हैं।

लेखक ने जंगली जानवरों के विषय में जो सुझाव ऊपर रखे हैं वे सब व्यावहारिक हैं। संरक्षण के विषय में कोरी बातों से काम नहीं चलता और न आकाश पाताल के कुलाबे मिलाने से ही कोई काम होता है। लेखक यह बात निःसंकोच रूप से लिखता है कि यदि हम स्वार्थ की खातिर ही - खाद्यान्न की यथेष्ट प्राप्ति के लिए ही जंगली जानवरों को कायदे से संरक्षण करें तो हमारे उद्योगों चमड़े और भोजन के लिए मांस की आवश्यकता पूरी हो सकती है। संरक्षण का तात्पर्य है कि उचित संख्या में जानवरों की रक्षा हो सके और उनकी बेहद बढ़ती संख्या को घटाया भी जा सके। इस विषय में लेखक ने सन् १९५१ में सबसे अच्छा कार्य महाराजा धौलपुर (अब स्वर्गीय) महाराजा उदयभानुसिंह का देखा। पर उससे पूर्व लेखक ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध सचित्र पाक्षिक पत्र 'लाइफ' में महाराज धौलपुर के जंगली जानवरों के संरक्षण संबंधी कार्यों के चित्र देखे थे। धौलपुर जाकर लेखक महाराज की मोटर में बैठे और उन्होंने मोटर में गाजरें, रोटियाँ अन्न के दाने और फलों के टुकड़े रख लिए। राज प्रासाद से कुछ ही दूर आगे मोटर की आवाज सुनकर एक मादा सांभर भागती हुई मोटर की ओर आई। बच्चा पीछे पीछे लजाता सा ठुमक ठुमक कर मा के [illegible] आया। मादा सांभर ने ८-१० गाजरें महाराज के हाथ से खाई और चौकड़ी जंगल में लौट गई। थोड़ी दूर आगे मोटर की आवाज सुन कर झुंड के झुंड तीतर पंखों के 'भिर्र भिर्र' और भर्र शब्द के साथ उड़ कर आये और उन्होंने मोटर को घेर लिया। तीतरों को चुग्गा डाल कर कुछ बातें करके महाराज धौलपुर आगे बढ़े। एक फर्लांग आगे जाकर उन्होंने 'मुंशीजी, मुंशीजी' की आवाज लगाई तो गीदड़ों का एक जोड़ा भागता हुआ आया और मोटर के पास खड़ा हो गया। एक एक रोटी मुंशी और मुंशियाइन को मिली जिसे वहीं बैठ कर उन्होंने खाया। सौ सवा सौ गज की दूरी पर जंगली लोमड़ी आई जिसे मांस के कुछ टुकड़े मिले। फिर आगे एक मंदिर ~~और~~ ~~[illegible] (free pier) के कई जोड़े~~

२ किलो
तालाब पर जो मोर रुकी तो कुकली (Decapitate) ४, कई लोगों
एक दर्जन बड़ी मैना, सतभैयों ने मोर के भीतर प्रवेश किया।
मोर तो मोर के बाहर रहे पर अन्य चिड़ियों में से कोई तो
महाराज के सर पर बैठे, कोई बांह पर, कोई पीठ पर और सबने
कुछ न कुछ भोजन पाया। महाराज चौलपुर ने दुःखी होकर कहा
"जंगलों को इतनी बुरी तरह से काटा जा रहा है कि जानवरों का
रहना असम्भव हो गया है। सामने तालाब पर मैं रोजाना शेर
दिवा सपनाक्षा, चीतल, लोमड़ी को काफी पाता हूँ। ये सब जंगली जानवर
और जंगली चिड़ियां हमारे साहित्य और हमारे जीवन के लिए बहुत
सहायक हैं। संतुलित ढंग से इनका संरक्षण होना एक एडिक्ट
योजना होनी चाहिए।"

जंगली जानवरों के जीवन संबंधी फिल्म बनने भी
बहुत आवश्यक है। शेर, बाघ, गेंडा, हाथी, ~~भालू~~ गौर, जंगली भैंसा,
चीतल, कस्तूरा तथा अन्य जानवरों पर प्रामाणिक फिल्मों का
बनना बहुत आवश्यक है। यदि फिल्म कम्पनियां यह कार्य करें
और कालेजों तथा स्कूलों में उन्हें दिखायें तो उन्हें पाया नहीं ह
सकता। अंग्रेजी में 'ट्रेड होर्न', 'एस्किमो', 'ब्रिंग दैम बैक अलाइव'
तथा अन्य ऐसी ही सुन्दर फिल्में हैं जिनको देखने से
मनोरंजन के अतिरिक्त ज्ञान वृद्धि भी होती है और जंगली
जानवरों के संरक्षण की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार की
फिल्में बनाने में व्यय तो पड़ेगा ही पर सरकार से ऐसी
फिल्मों के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में
भी ये फिल्में उपयोगी तो हैं ही साथ ही जंगली पशुओं
के संरक्षण का शुभ प्रोपैगैंडा भी करेंगी।

यह कार्य केवल सरकारी कर्मचारियों के ही
करने का नहीं है, वन प्रत्येक देशवासी ~~के करने का है कि~~
वह संरक्षण कार्य में योग दे और केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों
की सरकारें इस आवश्यक कार्य में केवल रुचि ही
नहीं वन, सक्रिय कदम उठायें ताकि देश की संतुलित
और चतुर्मुखी समृद्धि हो सके।

— श्रीराम शर्मा

सृष्टि का उद्भव और विकास

विज्ञान ने महान प्रगति की है और जीवन संबंधी सभी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है। पर सृष्टि की रचना कैसे हुई? जीवों का उद्भव कैसे हुआ? इस प्रश्न का उचित उत्तर देने में वैज्ञानिक अभी तक सफल नहीं हो सके हैं। वैज्ञानिक स्पष्ट रूप से यह नहीं बता पाये हैं कि विश्व का प्रारंभ कैसे हुआ और हमारा भूमंडल जो सूर्यमंडल का एक बहुत छोटा भाग है किस प्रकार अवतरित हुआ। पर संभवतः भूमंडल की बनावट सृष्टि के उद्भव के समय उन्हीं तत्वों की बनी थी जिनकी आजकल। इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथ्वी के उद्भव का कोई भी सिद्धांत माने पर यह बात तो माननी होगी कि प्रारंभ में पृथ्वी गैस का एक उष्ण प्रकाशपुंज गोला थी और अपनी गैस की ही अवस्था में उसने चन्द्रमा को अपने से पृथक कर दिया। शून्य में व्याप्त तीव्रतम शीत ने पृथ्वी के बाह्य गैस को ठंडा करके जमाया और साथ ही उसकी गरमी कम हो जाने से ऊपरी सतह फेनिल हो गई। बाद में वह बाह्य फेनिल रूप पपड़ी या छिलके की तरह हो गया।

पृथ्वी के और प्राणियों के उद्भव के विषय में हमें यहां पौराणिक मत नहीं लेना है हालांकि है वह भी बड़ा रोचक। वैज्ञानिकों के मत से पृथ्वी अब से दो अरब वर्षों से भी पहले सूर्य से अलग होकर एक स्वतंत्र ग्रह बन गई थी। सूर्य से अलग होने के एक अरब वर्ष बाद तक प्राणहीन पदार्थों का ही बनना बिगड़ना चलता रहा। पृथ्वी पर प्राणियों का उद्भव किस प्रकार हुआ इस पर कुछ लिखने से पूर्व यह लिखना आवश्यक है कि पृथ्वी के प्रादुर्भाव के विषय में विभिन्न वैज्ञानिकों के क्या मत हैं। सन् १७४९ में फ्रांस के वैज्ञानिक बफ्टन (Buffon) ने अपना मत प्रकट किया कि एक बहुत बड़े प्रकाश पिंड की टक्कर सूर्य से हो गई। फलस्वरूप सूर्य से बड़े बड़े टुकड़े उचट कर बाहर हो गए और समय पाकर ठंडे हुए और हमारे वर्तमान ग्रह उपग्रह बने।

उपर्युक्त निर्णय के बाद एक दूसरा सिद्धांत पृथ्वी के उद्भव के विषय में यह आया कि वह बहुत बड़ा प्रकाशपिंड सूर्य से टकराया तो नहीं पर उसके अति निकट से निकला तो उसके खिंचाव से सूर्य के वाष्पपुंज में बहुत जोर की लहरें उद्वेलित होकर उसकी परिधि से बाहर हो गईं। परिधि से बाहर निकला हुआ यह भाग कई हिस्सों में बंट गया तथापि धीरे धीरे ठंडे होकर ये हिस्से हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रह

उपग्रह बन गए।

तदोपरांत सन् १७५५ में विश्वविख्यात जर्मन विद्वान कांट और सन् १७९६ ई० में प्रसिद्ध गणितज्ञ लापलास ने पृथ्वी के उद्भव के विषय में अपने नए सिद्धांत वैज्ञानिकों को दिए। अपने मत में उन्होंने कहा कि सूर्य के चारों ओर वाष्प का एक घेरा आच्छादित था, वह घेरा संभवतः सूर्य में ही होने वाले भयंकर विस्फोट के कारण उत्पन्न हुआ था। घूमते घूमते सूर्य के वाष्पीय पिंड से कुछ भाग बाहर निकल पड़े और सूर्यजन्य आकर्षण के कारण वे उसके ~~उपग्रह बने~~ चक्कर काटने लगे। ये ही बाद में ठंडे होकर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उपग्रह बने।

पर सन् १९५२ में प्रसिद्ध विद्वान जेराई पी० कूपर ने पृथ्वी के उद्भव के विषय में एक अन्य नवीन सिद्धांत संसार को दिया। श्री जेराई पी० कूपर के सिद्धांत को प्रायः सब ही विद्वानों ने मान्यता दी है। श्री जेराई पी० कूपर के मत से शून्य (Space) में व्याप्त सब नक्षत्र धूल और गैस से पूरित हैं और गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के कारण घनत्व प्राप्त करके अंतरिक्ष में चक्कर लगा रहे हैं। पर वे प्रकाशमय क्यों हैं? इसका कारण श्री कूपर ने बताया है कि तीव्रगति से चक्कर काटते रहने के कारण उनमें इतनी उष्णता बढ़ गई है कि वे चमकते हुए तारों की हालत में आ गए हैं।

यद्यपि पृथ्वी सूर्य से अलग हो गई पर फिर भी उसका सम्पर्क सूर्य से बना रहा और वह ~~[illegible]~~ अब भी उसकी परिक्रमा करती है। पृथ्वी ठंडी हो रही थी पर फिर भी उसके चारों ओर वाष्प के बादल घिरे थे और इस कारण सूर्य-किरणें पृथ्वी के धरातल तक नहीं पहुंच पाती थीं। पृथ्वी पर जो पानी बरसता वह पृथ्वी पर गिरने से पहले ही फिर भाप बन कर ऊपर उठ जाता। करोड़ों वर्षों बाद जब पृथ्वी ~~ठंडी~~ काफी ठंडी पड़ी तब ~~पा~~ बरसनेवाला पानी पृथ्वी पर रुक सका। उधर पृथ्वी को रह रह कर ज्वालामुखी और भूकम्प कँपाते। पृथ्वी के भीतर से लावा ऊपरी पपड़ी को फोड़कर बाहर निकलता और जम कर ठंडा हो जाता। जहां लावा निकलकर ठंडा हो गया वहां तो स्थल भाग बने और जमीन पर जहां जहां लावा वहीं बैठ गया वहां मीलों लंबी दच की जमीन में गड्ढे हो गए और समय पाकर वहीं महासागर बने। पृथ्वी के गर्भ की अग्नि ज्यों ज्यों ठंडी होती गई त्यों त्यों ऊपर धरातल पर सिकुड़ने पड़ती गई इस प्रकार पृथ्वी पर पहाड़ और घाटियां बनीं। वर्षा का पानी पृथ्वी के खड्डों में एकत्र होने लगा। इस प्रकार पृथ्वी के तीन चौथाई भाग

में महासागर बने। इन महासागरों का पानी प्रारंभ में मीठा था
भयंकर तथा लगातार बारिश से भाप तथा बादलों का
प्रकोप कम हुआ और सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहुंचने
लगीं। इस प्रकार एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। पृथ्वी प्रकाश
से देदीप्यमान हो उठी और उस पर इस परिवर्तन से जीवन
का उद्भव भी संभव हुआ। यह अनुमान लगाया जा सकता है
कि पृथ्वी की ऊपरी सतह उस समय नग्न और गरम
रही होगी अतः जीवन के अंकुर सर्वप्रथम समुद्र
में ही फूटे। यह प्रगट है कि प्रोटोप्लाज्म या
जीवपंक में ही सर्वप्रथम जीवन के अंकुर थे। जिन्हें केवल अणुवीक्षण
यंत्र द्वारा ही देखा जा सकता जो एक प्रकार का
चिपचिपा पारभारी पदार्थ था। इस प्रकार एक कोशीय जीवों का
प्रादुर्भाव पानी में हुआ और सम्पूर्ण प्राणियों का केन्द्रबिन्दु
एक कोशीय जीवन से प्रारंभ हुआ। एक एक कोशिकीय अवस्था
से बहु कोशिकीय अवस्था विभाजन तथा अन्य कारणों से आ गई
विशेष परिस्थितियों में कोशिकाओं ने विशेष कार्य प्रारंभ किया
और इस प्रकार धीरे धीरे नए जीवों की उत्पत्ति हुई। उपरोक्त
उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि सजीव की उत्पत्ति जल में लगभग
एक अरब वर्ष पूर्व हुई। इस प्रकार जन्तुओं का यह रूप
अचानक नहीं वरन् धीरे धीरे विकास करके आया है। कोशीय
जीवन बड़ा विचित्र होता है उनका आकार गोल होता है और
भीतर एक जीवबिन्दु रहता है। जीवबिन्दु के भीतर अनेक सूक्ष्म
परमाणु होते हैं जिनके चारों ओर बहुत छोटे छोटे अणु
तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं।

जीवों के विकास की इस सीमा तक वनस्पति
और जीव जन्तुओं का एक ही क्रम चला पर विकास क्रम में
कुछ ने अपने ऊपर सैलीलोस का आवरण चढ़ा लिया और
हरे रंग का क्लोरोफिल (Chlorophyll) पैदा किया। हरे
पदार्थ का यह गुण था कि जिस प्राणी के भीतर रहता उसके
लिए सूर्य के प्रकाश की शक्ति का उपयोग
करके कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon Dioxide) को हवा
और पानी की खुराक में बदल देता और बस यही दो
चीजें किसी भी प्राणी के लिए जरूरी हैं। ये पते के से
हरे 'क्लोरोफिल' ही हमारे वृक्षों के पूर्वज हैं। जिन जीव
कोशों ने सैलीलोस (Cellulose) का आवरण तो
चढ़ा लिया पर 'क्लोरोफिल' पैदा नहीं किया वे चलने
फिरने योग्य तो हो सके पर गैस और पानी को अपने लिए

हवा और पानी में न. बदल सके इसलिए जीवन धारण हेतु उन्होंने पड़ोसी हरे जीवकोशों को खाना शुरू किया। इन्हीं जीवकोशों को हम संसार के समस्त प्राणियों का पूर्वज कह सकते हैं क्योंकि सारे संसार के जीवों का विकास इन्हीं से हुआ। इसमें कोशीय जीव बढ़कर दो भागों में बँट जाते थे और दोनों स्वतंत्र जीव बन जाते थे। इसी तरह वे विभक्त होते रहते। यह जीवधारी काफी समय तक चले लेकिन उसके बाद वे एककोशीय जीव आपस में मिलकर इस संयुक्त कोशीय जीव की शक्ल में आने लगे और उनमें अब अलग अलग होकर स्वतंत्र जीव बनने की क्षमता न थी।

समय पाकर इन संयुक्त कोशीय जीवों में परिवर्तन हुआ। प्रत्येक कोश अलग अलग कार्य करने लगा। ~~केंचुए~~ जीवों का शरीर भी एक नली के समान हो गया और जिनमें एक ओर मुखछिद्र रहता था जिससे भोजन शरीर के भीतर पहुंचकर सब कोशों का पोषण करता था। तत्पश्चात् इस भाग से दूसरे भाग तक संदेश पहुँचाने के लिए स्नायुमंडल का विकास हुआ और कि धीरे धीरे अब जीवों का विकास हुआ तो उनका आकार बढ़ गया और रक्तवाहिनी नलियों का जाल सा उनके शरीर के सब कोशों का पोषण करने लगा। चूंकि इन कोमल शरीर वाले जीवों ने अपने चिह्न (Fossil) नहीं छोड़े हैं इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि कितनी शताब्दियों तक ये जीव विकास करते रहे। पचास करोड़ वर्ष पुराना 'फासिल' जो मिला है उससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक सब अमेरुदंडीय जीवों का विकास हो चुका था। इस समय तक पृथ्वी तो पहाड़ों और चट्टानों से भरी थी पर समुद्र में असंख्य प्राणी बन गए थे और जीवन संघर्ष करते हुए विकास की ओर बढ़ रहे थे। इन जीवों को जीवित रखने के लिए समुद्र में छोटे छोटे पौधों का भी ~~विकास~~ उद्भव हो गया था

विभिन्न आकार प्रकार के इन समुद्री जीवों में सबसे अधिक विकसित अपने पानी में रहने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और काफ़ी संख्या में संतान की उत्पत्ति करने वाला; ताकि नयी नयी जातियाँ बनें, एक ट्रिलोबाइट (Trilobite) नामक जीव था। बीस करोड़ वर्षों तक ट्रिलोबाइटों ने समुद्र में अपना शासन जमाया। इन जीवों के नाश के बाद जिस नए जीव ने अपना विकास किया वह समुद्री बनबिछिया (Water Scorpion) कहलाया। इन मांसाहारी जीवों के शरीर आठ फुट तक बड़े होते थे और अन्य अनेक विकसित जीवों को अपना भोजन बनाकर बीस करोड़ वर्षों तक समुद्रों में बेठाठ से रहे। फिर विकास

क्रम में इनका भी लोप हो गया और मीठे पानी के जलाशयों की कीचड़ से भी तह पर जीव जगत के भविष्य को बनाने वाले एक विशेष प्रकार के जीव स्वतंत्र विकास कर रहे थे। इन जीवों के आकार भद्दे, दोहरे और चपटे थे मुखविवर के स्थान पर शिरोफलक जैसा कटोरा था जिससे वे अपना भोजन कीचड़ में से चूस लेते थे। पर प्रकृति ने दो अद्भुत उपहार इन जीवों को दिये थे, एक तो शरीर का कड़ा खोल और दूसरा उनका मस्तिष्क। समुद्री वनस्पतियां इन दोनों उपहारों के कारण इन जीवों को खाने में असमर्थ रहीं। इन जीवों को ऑस्ट्राकोडर्म (Asbracoderm) या कवचधारी मत्स्य (Shell Skinned Fish) कहा जाता है।

इन्हीं कवचधारी मछलियों से जिनका विकास आदिकल्प समुद्र में साढ़े सात करोड़ वर्ष तक रहा हमारी मछलियों का विकास हुआ। इन विकसित मछलियों के शरीर में मेरुदंड था जिससे हमारे जीव जगत के विकास में एक नया अध्याय ही प्रारम्भ कर दिया। मेरुदंड के साथ साथ शरीर के भीतर हड्डियों का कंकाल भी बना और पक्षों (Fins) का भी विकास हुआ। इन मछलियों का शरीर सूचाकार हो गया जिससे वे पानी में बड़ी सुविधा से विहार करने लगीं। अब पानी की तलहटी की कीचड़ में न रह कर वे जल तैरने लगीं क्योंकि उनके सूक्ष्म पानी में शरीर को संतुलित तो रखते ही थे गति में भी तीव्रता लाते थे। चूंकि अब कवच की कोई आवश्यकता न थी इसलिए कवच भी गायब हो गया। सारे मीठे जलाशय अब इस प्रकार की मछलियों से भर गये तथा इनको समुद्र में स्थान मिला जहां इनकी अनेकों जातियां विकसित हुईं और ने पांच करोड़ वर्षों तक समुद्र में अपना आधिपत्य जमाये रहीं। इन मछलियों के दो मुख्य भेद थे (1) कोमल हड्डी वाली मछलियां जैसे आजकल की हांगर (Shark) (2) कड़ी हड्डी वाली मछलियां जैसी आजकल अन्य साधारण मछलियां होती हैं।

कड़ी हड्डी वाली मछलियां अपेक्षाकृत अधिक संख्या में फैली और उनमें फेफड़े का भी विकास हुआ। अगर ऐसा न हुआ होता तो वे केवल पानी में ही सांस लेतीं और जब पृथ्वी का मौसम इतना खराब हो गया कि सारे जलाशय मरे जीवों की लाशों से पट गए और पानी में प्राणवायु (oxygen) की कमी हो गई तब वे मर जातीं। पर फेफड़े के कारण ऐसी विकराल अवस्था में वे मछलियां पानी की सतह पर आकर वायु की वायु में उसी तरह सांस ले लिया करतीं थीं जैसे हैल और सरु आदि करती हैं।

पृथ्वी पर फिर परिवर्तन हुआ और घनघोर वर्षा से सब सरोवर जलाशय भर गए तब जल में प्राणवायु की कमी न रही और मछलियाँ फिर गलफड़ों से सांस लेने लगीं और फेफड़े हवा की थैली के रूप में बदल गए। ये मछलियाँ ही आजकल की कड़ी हड्डीवाली मछलियों की पूर्वज हैं और इनकी बीस हजार जातियाँ हमारे समुद्रों तथा मीठे पानी के जलाशयों में भी पाई जाती हैं।

मछलियों के पाँच करोड़ वर्षों के समय के प्रारंभिक काल के दिनों में ही पृथ्वी पर वनस्पति का विकास हो रहा था। बिना पत्तियों और जड़ों के ये पौधे सारी पृथ्वी पर फैलने लगे थे। धीरे धीरे जब इनका विकास हुआ और मध्य-युग समाप्त होते होते तब तक वे पौधे 80-90 फुट तक ऊंचे बढ़ने लगे थे। पृथ्वी पर इतनी हरे रंग की भोजन सामग्री के लालच में पानी के जीव खुश्की पर आने के लिए ललचाने लगे। जो जीव पानी से पृथ्वी पर आने लगे उन्हें उभयचर (Amphibians) कहते हैं। उभयचर जल और थल दोनों में रहने योग्य थे। उभयचरों का प्रारंभिक जीवन पानी में बीतता था बड़े होने और फेफड़ों के कारण वे खुश्की पर भी रहते। पानी में भी खूब तैरते और पैरों के विकास के कारण खुश्की पर भी खूब दौड़ते तथा एक जलाशय के सूख जाने पर दूसरे में भाग जाते। इनके कान भी अद्भुत विकास को प्राप्त हो गए थे जिनसे वे शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गए। उभयचरों ने पृथ्वी पर भोजन अधिक और शत्रु कम देखे तो वे अपना समय पृथ्वी पर ही अधिक बिताने लगे पर उनके अंडे तो खुश्की में रह नहीं सकते थे इसलिए पानी का सहारा उनके लिए आवश्यक हो गया। उभयचरों की रक्तवाहिनी नलियाँ और फेफड़े इतने विकसित नहीं थे कि वे खुश्की पर ही रह सकते इसलिए उभयचर पानी के निकटवाले जंगलों में काफी संख्या में बढ़ने लगे। लगभग 10 करोड़ वर्षों तक धरती पर इन उभयचरों का बाहुल्य रहा पर विकास क्रम में इनका भी लोप हो गया। इन्हीं उभयचरों के वंशज मेंढक इत्यादि अब भी दिखाई पड़ते हैं।

पर इसी समय जीवों की एक और शाखा भी अपने जीवन के लिए संघर्ष करके समय के अनुकूल परिवर्तन कर रही थी और धीरे धीरे सारे पृथ्वी पर उनका ही आधिपत्य हो गया। ये अंगम थे। इन अंगमों को अंडे देने के लिए भी पानी को छोड़ देने की आवश्यकता न थी क्योंकि इनके अंडे कड़े छिलके वाले अंडे देने का विकास कर लिया था। अतः कुछ भीमकाय अंगमों को छोड़ कर जो पानी से दूर जा ही नहीं सकते थे बाकी सब अंगम खुश्की पर ही रहने लगे। इस प्रकार खुश्की पर वानस्पतिक भोजन की भरमार

के कारण इन जीवों की संख्या तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गई साथ ही आकार प्रकार और भिन्न भिन्न जातियों की वृद्धि भी होती गई। फलतः देखते देखते समस्त भूमंडल पर इन उरंगमों का आधिपत्य हो गया। उरंगमों के विकास के लिए अन्य अनेक साधन भी थे। इनके पैर बड़े न होकर शरीर से सटे होने लगे जिसके कारण बड़े भारी शरीर को चलाने फिराने में बड़ी सुविधा होने लगी और गले की अपेक्षा पसलियों की सहायता से सांस लेने में सफल हो गए तथा रक्त संचार की व्यवस्था भी पूर्ण हो गई। धीरे धीरे उरंगमों ने उचित वातावरण पाकर सारे भूमंडल को घेर लिया। अधिक समय तक स्थल पर रहने के कारण इन जीवों के पैर खुश्की पर चलने के योग्य हो गए। कुछ ने तो सांपों के समान पैर खो दिए कुछ के पतवार नुमा हो गए और पानी में तैरने लगे तो कुछ के शरीर पर झिल्ली हो गई जिससे वे आकाश में उड़ने लगे। आकाश में उड़नेवाले ये उरंगम ही हमारी चिड़ियों के पूर्वज नहीं हैं। चिड़ियों के पूर्वज तो वे उरंगम हैं जिनको आर्कियोप्टेरिक्स (Archaeopteryx) कहते हैं। उरंगमों के समान ही इनका जीवन था पर केवल इनके शरीर पर पंख थे।

भीमकाय उरंगमों में डाइनासोर (Dinosourus) सबसे प्रसिद्ध थे। इनकी अनेक जातियों में डिप्लोडोकस (Diplodocus) डाइनासोर की ९० फुट तक की लंबाई हो गई थी। इस शाकाहारी जीव की पूंछ और गरदन बहुत लंबी और पतली थी पर मस्तिष्क मुर्गी के अंडे के समान था। दूसरा प्रसिद्ध डाइनासोर ब्राकियोसोरस (Brachiosaurus) था जिसका वजन ५० टन होता था। वह सड़क पर खड़े होकर हमारे घरों की दूसरी मंजिल तक पहुंच सकता था। तीसरा डाइनासोर टाइरनासरस (Tyrannosaurus) कहलाता था। यह छः इंच लंबे दांतवाला २० फुट ऊंचा, माथे पर नुकीले सींगवाला गरदन पर कड़े कवच वाला मांसाहारी एक भयानक जीव था। इसकी पूंछ पर सींगनुमा तेज अस्त्र होते थे। दस करोड़ वर्षों तक इन जीवों का पृथ्वी पर राज्य रहा।

इसके बाद पृथ्वी पर जलवायु में फिर परिवर्तन हुआ, दलदल वाले भाग सूख गए और अतल से पहाड़ों की चोटियाँ आकाश तक पहुंचने लगीं। उत्तरी ठंडी हवाओं से सब पेड़ पौधे समाप्त हो गए। इस प्रतिकूल जलवायु में वे उरंगम जो नम और गरम जगहों में रहनेवाले थे जीवन यापन में असमर्थ हो मिट गए।

आर्कियोप्टेरिक्स नाम का उरंगम शरीर को हलका करके परों का विकास करके आकाश में उड़ने की तैयारी कर रहा था। परिस्थितियाँ अनुकूल थी उन्हें सफलता भी मिल गई आगे चलकर ये ही चिड़िया बने। कोमल परों के कारण ही चिड़ियों के शरीर का तापमान एक जैसा रहने लगा। अतः अब शरीर को गरम रखने के लिए सूर्य की गरमी की आवश्यकता नहीं रही। पंखों से उड़कर वे रक्षा और भोजन प्राप्त करने लगीं। उरंगमों की एक शाखा तो पक्षी बनी पर दूसरी शाखा से कुछ छोटे जीव अपना अलग विकास करने लगे। ये चूहे के आकार के चार पैरों वाले गरम रक्त के जीव थे (Hot Blood Animal) इनका मुख्य भोजन मांस था। गरम रक्त के जीव होना और शरीर पर बालों का विकास ही इनकी विशेषता थी।

ये जीव इस प्रकार के थे कि कीचड़ में नहीं रह सकते थे अतः दलदल के सूखते ही जैसे ही बरफ से पृथ्वी ढंक गई वैसे ही इन जीवों ने विकास किया। भारी शरीर वाले, बैठकर खानेवाले उरंगम तो हिमआंधियों से नष्ट हुई वनस्पति के कारण भोजन न मिलने से मर गए पर चूहे जैसे बालों वाले स्तनपोषी जीवों की भरमार होने लगी। इन स्तनपोषी गरमखून वाले, घनेबालों वाले जीवों के मस्तिष्क भी विकसित थे। इन जीवों के भ्रूण शरीर के भीतर ही पलने लगे और अंडों के स्थान पर बच्चे पैदा होने लगे। डकबिल प्लैटिपस तथा एकिडना को छोड़ सब स्तनपोषी बच्चे पैदा करते हैं। बच्चों को स्तनों से दूध पिला कर पालने से उन्हें काफी सुविधा बच्चे पालने में मिलती है।

भूमंडल पर अब मौसम में पहले जैसी बात नहीं रही थी। गरम जलवायु के अनुकूल नए नए पेड़ पौधे उगने लगे थे, चारों ओर घास ही घास हो गई पर ये प्रारंभिक स्तनपोषी तो मांसाहारी थे अतः वनस्पति इनके लिए व्यर्थ थी। पर जब इनकी संख्या बढ़ती गई और कीड़े मकोड़े आदि भोजन के लिए पर्याप्त न रहे तब विवश होकर कुछ जीव शाकपात से पेट भरने लगे। इस तरह स्तनपोषियों की दो शाखायें हो गईं, शाकाहारी और मांसाहारी। मांसाहारी फिर शाकाहारियों को अपना भोजन बना कर गुजर करने लगे। स्तनपोषियों में एक जीव मनुष्य आज भी सारी पृथ्वी पर अपना आधिपत्य जमाये है। स्तनपोषियों की की एक शाखा आकाश, एक शाखा थल और एक शाखा जल में है पर उनमें सबसे अधिक विकसित मनुष्य ही है।

मानव भूमंडल का स्वामी यों ही नहीं बन गया है, इसके लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा है।

भोजन की सुविधा से जिस प्रकार भीमकाय अंगों का विकास हुआ था उसी तरह स्तनधारियों में भी मैमथ (Mammoth) जैसे विशालकाय जीवों का भी विकास हुआ पर मनुष्य जिस जिन जीवों से विकास हुआ वे जीव बहुत छोटे कद के थे। ये जीव तेज भागने वाले, पेड़ों पर चलने में बड़े चतुर होते थे। धीरे धीरे समय पाकर इन्हीं जीवों से लेमूर, बन्दर, वनमानुष और मनुष्यों की शाखायें निकलीं और उनके विकास में लगातार संघर्ष के पांच करोड़ वर्ष लग गये। मनुष्य के पूर्वजों में कुछ ऐसी विशेषतायें थीं जो उनकी उन्नति का कारण बन गईं। चौथी पैरों में से अगले दो पैर हाथों में बदल गए जिससे सहारा पेड़ों का तना पकड़ कर चढ़ने उतरने लगे। हाथों में भी उंगलियों ने उनकी उन्नति में शीघ्रता से सहायता दी। पेड़ों पर निवास के कारण इनकी दृष्टि भी वैसी हो गई। पर सबसे अद्भुत था इनका मस्तिष्क जिसने इनको सबसे बुद्धिमान जीव सिद्ध करके संसार का राज्य दिया।

जीवों के विकास के संघर्ष के दिनों में एक बार फिर उत्तर की बर्फीली हवाओं ने सारी पृथ्वी पर हिम-युग ला दिया। पेड़ सूख गए और पेड़ों पर निवास करने वाले जीव इस भयानक स्थिति में बच न रह सके, बस वे ही जीव जो पेड़ों से उतर जमीन पर भी चल फिर सकने में समर्थ हुये थे हिमयुग में बच सके। यह जीव मनुष्य थे। समस्त जीवों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसके न विषदंत हैं, न पंख हैं, न पंजे पर उसके पास मस्तिष्क है जिसके बलबूते पर उसने संसार के समस्त जीवों और प्रकृति पर विजय पाई। पेड़ों से उतर कर पृथ्वी पर रहने के समय से ७ करोड़ वर्ष पूर्व से पृथ्वी पर चार बार हिमयुग आया था। पर मनुष्य ने किसी न किसी प्रकार अपनी रक्षा की। वनस्पति तथा फल फूल की कमी में वह मांस खाने लगा और मांस प्राप्त करने के लिए अन्य जीवों को मारने के लिए उसने पत्थर और लकड़ी का सहारा लिया।

मांसाहारी मनुष्य को जंगलों की ही कोई विशेष आवश्यकता न थी। गाय बैल, सुअर आदि पशु मैदानों में ही अधिक मात्रा थे। लाठी में नुकीले पत्थर लगा कर मनुष्य ने नवीन प्रकार के हथियार बनाये और आग को अपने वश में करके अपनी सुरक्षा और भोजन का एक अच्छा साधन बना लिया। मनुष्य की इस अवस्था का समय २५ हजार ईसा पूर्व से १५ हजार ईसा पूर्व तक का माना जाता है और इस युग को मानव का पूर्वप्रस्तरकाल (Old Stone Age) कहते हैं। इस काल में मानव गिरियों में रहता था

और इधर उधर शिकार मारा करता था। गिरोह के प्राणी कार्यों का बटवारा कर लिया करते थे। कुछ शिकार करते तो कुछ खाल इत्यादि साफ करते। कुछ मनुष्य इन दिनों में भी झोंपड़े बनाकर रहना पसंद करते थे। एक गिरोह के मनुष्य दूसरे गिरोह के मनुष्यों से युद्ध करते रहते थे।

इसके बाद ईसा पूर्व १५ हजार वर्ष से ३ हजार ईसा पूर्व तक का काल नवीन प्रस्तर काल (New Stone Age) कहलाता है। इस युग में मनुष्य ने एक ही स्थान पर रह कर बीज बोकर खेती करना भी सीखा। उसने शिकारी बाना उतारा और वह किसान बन गया। जिन पशुओं को मार कर वह खाता था उनको पालतू बनाकर उनसे अधिक उपयोगी काम लेना प्रारंभ कर दिया। अब तो पशु से रक्षा, मांस, दूध, सवारी, खेती आदि का सब काम मनुष्य ने लेना शुरू कर दिया। भोजन की समस्या न रही और आराम का समय निकल आया तो उसने मिट्टी के बर्तन, ऊनी कपड़े, चित्र आदि बनाने में वह समय लगाया और आग से खाना पकाना भी सीख लिया।

नवीन प्रस्तर काल के बाद कांस काल (Bronze Age) आया जिसमें मनुष्य ने कांसे के हथियार बनाये, पके मकान बनाने लगा; बड़े बड़े गांवों को नगर बनाने लगा। पहिये का आविष्कार किया जिससे यातायात की सुविधा हो गई। सबसे बड़ी उन्नति जो मनुष्य ने इस युग में की वह थी लिपि और वर्णमाला की। इसके बाद मनुष्य ने लोहे का भी आविष्कार किया। लोहा, कांसे की अपेक्षा हथियारों के लिए अधिक उपयुक्त था। बस लोहे की प्रचुरता से लौह-काल का प्रारंभ हो गया। लौह-काल अब तक चला आ रहा है। इस प्रकार जीवधारियों का यह लम्बा मार्ग तय हो गया जिसके एक ओर जीव पंक तथा दूसरी ओर मनुष्य है।

सूर्य से अलग होकर हमारी पृथ्वी जब एक स्वतंत्र ग्रह बनी तब वह गैसीय अवस्था में थी, धीरे धीरे वह ठंडी हुई। ~~और तब~~ पृथ्वी के उस प्रारंभिक समय में कोई भी जीवन उस पर न था। ज्वालामुखी की फुफकार और भूकम्पों की कंपकपाहट से एक अरब वर्षों तक प्राणिहीन पदार्थ ही बने बिगड़े। आदिकाल के बाद ही विराट जीवहीनता के बीच जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। यह जीवन एक कोशीय जीव के रूप में ही हुआ। तत्पश्चात् संघबद्ध होकर ये

जीव विकसित होने लगे। स्वतंत्र सत्तावाले ये कोश जब संयुक्त होकर किसी का निर्माण करते हैं तो पृथक हुए बिना ही उसका संरक्षण करते हैं। ~~जड़ और जीव में भेद है।~~

जड़ और जीव में भेद है। जीव कोश तथा कोश समूह का संकलन है जिसकी निश्चित शकल सूरत होती है। जीव अपने बढ़ने के लिए भोजन करते हैं, मल त्याग करते हैं, सांस लेते हैं और खाद्य पदार्थ तथा प्राण वायु की हलकी आंच में जलने से शक्ति पाते हैं। ~~और~~ जीव में गति होती है। जीव संतान उत्पन्न कर सकते हैं, वृद्ध होने पर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जीवों को इस प्रकार दो भागों में बांट सकते हैं :—

१- जीव-जन्तु
२- पेड़-पौधे

पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं की बाह्य रचना में तो भेद है ही आंतरिक रचना में भी भेद है। पेड़ पौधे हृदय तथा मस्तिष्क से हीन ~~और~~ तो हैं ही गतिशील भी नहीं होते। पेड़ पौधे, जीव जन्तुओं की तरह ठोस पदार्थ का भोजन नहीं कर सकते। जीव जन्तुओं और पेड़ पौधों के कोशों में भी अंतर रहता है। जीव जन्तुओं के कोशों में भित्ति नहीं होती और 'क्लोरोफाइल' का अभाव रहता है।

इन जीव कोशों की सहायता से ~~...~~ एक एक देह बनी है उनको हम अणुवीक्षण यंत्र से देख सकते हैं। जिस प्रकार एक एक ईंट से भवन तैयार होती है उसी प्रकार एक एक कोश से शरीर की रचना हुई है। हर कोश के चारों ओर कोश भित्ति होती है जिससे कोश के भीतर की वस्तुओं की रक्षा होती है और दूसरा कोश पहले से अलग रहता है। इन्हीं कोशों में जीवन रस भरा रहता है। ~~कोशों में~~ भिन्न भिन्न कार्य करने के लिए भिन्न भिन्न कोश होते हैं और भिन्न भिन्न वंशों तथा वर्गों के कोश-समूह भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। कोशों के भीतर का जीवन रस गाढ़ा और चिपचिपा सा पदार्थ होता है जिसमें ९० प्रतिशत पानी और शेष में प्रोटीन, नंधक और फोस्फोरस आदि होता है। जल ही जीवन का आधार है और इसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि कोशों के जीवन रस में से यदि पानी सूख जाय तो जीवन-क्रिया समाप्त हो जाती है। जब एक कोश बढ़ जाता है तो दो में विभक्त हो जाता है और वे दोनों अलग स्वतंत्र सत्ता कायम कर लेते हैं। कोश विभाजन दो प्रकार से होता है :- परोक्ष कोश विभाजन और प्रत्यक्ष कोश

विभाजन। परोक्ष कोश विभाजन में तो कोश का शरीर बट कर दो भागों में बँट जाता है और दोनों भाग दो स्वतंत्र जीव हो जाते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष कोश विभाजन में किसी जीव का कोई विशिष्ट कोश जो संतानोत्पादक कोश कहलाता है जीव से अलग निकल पड़ता है और नए जीव की उत्पत्ति करता है। यही अलैंगिक संतानोत्पत्ति कही जाती है। परन्तु नर और मादा के शरीर से संतानोत्पादक कोश निकल कर मादा के भीतर मिलकर संयुक्त कोश बन कर नए जीव के रूप में परिवर्तित होकर पैदा होता है तो उसे लैंगिक-संतानोत्पत्ति कहते हैं। सब स्तनपोषी जीवों की संतानें इसी प्रकार पैदा होती हैं।

भारत का वर्त्तमान प्राकृतिक रूप

भारत पृथ्वी का एक बहुत छोटा अंग है। पृथ्वी का पूर्व रूप क्या था और सूर्य से अलग होकर उस पर वाष्प ज्वालामुखियों तथा वर्षा का क्या प्रभाव पड़ा और उस का वर्तमान रूप कैसे आया इसका विवेचन किया जा चुका है। भारत में क्या क्या प्राकृतिक क्रियायें हुईं उन सब को बताने विषय रूप से बताने की आवश्यकता तो नहीं है क्योंकि यह पृथ्वी का ही एक अंग है पर यह बताना आवश्यक है कि भारत का वर्तमान रूप कैसे आया।

भारत का सबसे पुराना भाग हिमालय नहीं है वरन विंध्य पर्वत और कुछ दक्षिण का भाग है। हिमालय, वर्तमान पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल के स्थान में किसी समय सागर था। पृथ्वी के गर्भ से भयंकर ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ और लावा भीतर से निकल कर वहाँ गरम लावे और अन्य पदार्थों के निकलने से हिमालय बना और हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच सागर बना रहा। हिमालय की गगन चुंबी शिखरों पर आज भी समुद्र में पाये जाने वाले जीवों के पथरीले चिह्न (Fossils) मिलते हैं। कालांतर में वर्षा और हिमपात के कारण हिमालय से नदियों का प्रवाह हुआ और वे समुद्र में गिरने लगीं। धीरे धीरे पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल डेल्टा के रूप में बनने लगे। अब भी बंगाल की खाड़ी में डेल्टा भूमि आगे बढ़ती जाती है। सुन्दरबन धीरे धीरे बंगाल की खाड़ी की ओर बढ़ता जाता है। भारत के इस भूभाग के निर्माण में दो चार लाख वर्षों से भी बहुत अधिक समय लगा होगा। दक्षिणी पठार में भी ज्वालामुखी के मुख से पृथ्वी ऊपर उठी और वर्षा के जल से नदियाँ अब सागर की ओर प्रवाहित होने लगीं। इसी प्रकार भारत का वर्तमान रूप बना।

सृष्टि का उद्भव तथा एक कोशीय जीवों से लगाकर वर्तमान मानव का रूप कैसे आया उस पर तो पहले ही लिखा जा चुका है। भारत एशिया का भूखंड है और उस पर जीवों की रचना पृथ्वी के अन्य भागों के समान ही हुई है। पर इस अध्याय का उद्देश्य तो केवल भारत के ही जंगली जीवों का वर्णन करना ही है। इसलिए यहाँ में पृथ्वी के अन्य जीवों की चर्चा भले ही हो जाय उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया के कंगारू, टस्मानिया की जंगली कुत्ता डिंगो, उत्तरी ध्रुव के ध्रुवी श्वेत भालू,

~~और~~ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ग्रिजली भालू, ऐंडिस प्यूमा, ~~जगुआर~~ दक्षिणी अमेरिका के जोगार, लामा और चिकोरी सूअर और अफ्रीका के जेबरा, ~~हाथी~~ हार्टबीस्ट, अफ्रीकन हाथी, चरख (Spotted Hyaena) आदि तथा वहाँ के अन्य अनेक आकर्षक जीवों का वर्णन भले ही ~~हो जाय~~ कर दिया जाय पर विशेष रूप से हमें केवल भारत के जीवों की चर्चा करनी है।

जीव-जन्तुओं का वर्गीकरण

भारत के जंगली जीवों के वर्गीकरण का प्रश्न एक प्रकार से विश्व के जीव जंतुओं के वर्गीकरण में आता है क्योंकि भारत का भूखंड विश्व का एक भाग है और भारत के जंगली जीवों का वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टि से उसी आधार पर होना चाहिए जिस आधार पर विश्व के जीव जंतुओं का वर्गीकरण होता है। जीव जंतुओं में जलचर थलचर और नभचर होते हैं। और आकार प्रकार में वे हल मछली और हाथी से लगाकर खरगोश तथा चूहों तक पाये जाते हैं। जीव जंतुओं में कीट पतंग भी होते हैं पर क्या साँप, चूहे, हाथी, गैंडा और गोंच तथा मछली आदि में कोई समता है? फिर मकड़ी और केंकड़ा आदि से वर्गीकरण में उनका संबंध है? यदि कहीं हाथी या ऊँट के हाड़कंकाल पड़े मिलें और साथ ही चूहों छिपकलियों और आदमियों के कंकालों को ध्यान से देखा जाय तो क्या कोई समता उनमें दिखाई पड़ती है। यदि उनमें कोई समता है तो ~~क्या~~ हाथी खरगोश, मकड़ी और केंकड़े में ~~कोई भी मिलती जुलती~~ क्या ~~कड़ी~~ सकता है? देखने से स्पष्ट हो जाता है कि हाथी-ऊँट, पक्षी, चूहा, मानव और मछली के कंकाल में रीढ़ की हड्डी - मेरुदंड - होती है। पर मकड़ी, केंकड़े और मकड़ी में यह हड्डी नहीं होती और इसलिए सुविधा की दृष्टि से नहीं वरन शरीर रचना की वैज्ञानिक दृष्टि से हम जगत के सम्पूर्ण जीव जंतुओं को दो विभागों - दो समूहों - में विभाजित कर सकते हैं। शरीर रचना की दृष्टि से वे समूह हुए :-

1 - मेरुदंडीय (Vertebrates)
2 - अमेरुदंडीय (Invertebrates)

जीव जन्तुओं के उपर्युक्त दो समूहों - मेरुदंडीय और अमेरुदंडीय - में यह भेद है कि मेरुदंडीय में रीढ़ की हड्डी होती है तथा उससे लगा हुआ अस्थिपंजर होता है पर अमेरुदंडीय में ~~कोई~~

रीढ़ की हड्डी नहीं होती और न आंतरिक पंजर ही होता है। विकास के क्रम में इस प्रकार मेरुदंडीय समूह के जीव अमेरुदंडीय जीवों ~~से उच्च~~ की अपेक्षा उच्च श्रेणी के हुए। जीवों का उद्भव पहले अमेरुदंडीय प्राणी के ही रूप में था और धीरे धीरे विकसित होकर वह निम्न श्रेणी से ऊंची श्रेणी पर पहुँचा है। इस विकास क्रम में मेरुदंडीय जीवों में काफ़ी परिवर्तन हुआ और विशेषताये आ गईं। मेरुदंडीय समूह के हजारों की प्रकार के जीवों को पाँच समुदायों में बड़ी आसानी से विभाजित किया जा सकता है, यथा—

१- मत्स्य समुदाय
२- उभयचर समुदाय
३- रेंगम समुदाय
४- पक्षि समुदाय
५- स्तनपोषित समुदाय

पृथ्वी पहले जलमय थी और सबसे पहले मेरुदंडीय समूह में मछली का प्रादुर्भाव हुआ। मछली ही सबसे पहला प्राणी था जिसके रीढ़ की हड्डी थी। ~~मछली से विकास हुआ उभयचर जंतुओं का।~~ मछली मत्स्य विकास क्रम में मछली के बाद उभयचर प्राणी आए और मेंढक को सब जानते हैं कि वह फुदकने वाली प्राणी जल और थल दोनों में समान रूप से रह लेता है। मेंढक पानी में अण्डे देता है और अंडे से निकलने के बाद कुछ समय तक वह पानी में ही मछली के समान तैरता रहता है पर धीरे धीरे ~~एक के स्थान पर~~ उसके हाथ पैर निकल आते हैं और वह स्थल पर भी फुदक सकता है।

उभयचर प्राणियों से रेंगम जीवों का विकास हुआ। रेंगम जीवों के टाँगें तो निकली पर वे इतनी छोटी छोटी होती हैं कि वे प्राणी पेट के बल रेंगते से प्रतीत होते ~~हैं~~ हैं। रेंगम —पेट के बल रेंगकर चलने वाले समुदाय में कुछ

ऐसे भी होते हैं जिनके हाथ पैर नहीं होते जैसे साँप। साँपों के हाथ पैर इसलिए लुप्त हो गए क्योंकि उन्होंने उनसे काम नहीं लिया। कुछ बड़े सांपों के शरीर में (पाइथन) टाँगों के चिह्न अवशिष्ट हैं। मगर गिरगिट और कछुए की भिन्नता उंगम समुदाय में है।

यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि — मत्स्य, उभयचर और उंगम समुदाय के प्राणी ठंडे रक्त वाले हैं अर्थात उनके शरीर का तापमान वाह्य तापमान के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। इनके बाद विकास क्रम में जो जीव आए वे गरम रक्त वाले जीव हुए अर्थात जिनके शरीर का तापमान वाह्य वातावरण की सर्दी गर्मी से घटता बढ़ता नहीं है। मनुष्य का सामान्य तापमान कड़ाके की ठंड और भयंकर लू में एक ही रहता है पर मछली और साँप का ताप जाने एक सा नहीं रहता।

विकास क्रम में उंगम जीवों के बाद पक्षी आए। पक्षियों के पहले पंख नहीं होते थे वे चमगीदड़ों की भाँति उड़ने के लिए खिल्ली होती थी, मुंह में दांत होते थे और गिरगिट की ही पूंछ भी होती थी।

पक्षियों के बाद उद्भव हुआ स्तनपोषित समुदाय के प्राणियों का। पर यहाँ यह बताना आवश्यक है कि स्तनपोषित जीवों का विकास पक्षियों से नहीं हुआ उभयचर जीवों के दो प्रकार के विकास हुए। एक से तो उंगम और पक्षी और दूसरे प्रकार की विकास शाखा से किसी दूसरे ही प्रकार के कालांतर में स्तनपोषित जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। वैज्ञानिकों के मत से पशु संसार में स्तनपोषित समुदाय के प्राणी सर्वश्रेष्ठ हैं, और उनमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए उसे 'अशरफुल मखलूकात' — ~~जीवोत्तम~~ (Lord of Creation) कहते हैं।

स्तनपोषित समुदाय डकबिल को छोड़कर अंडज नहीं होते जरायुज अर्थात सच्चे पैदा होते हैं

और स्तन से दूध पीकर पलते हैं। स्तनपोषित समुदाय की मादाओं के स्तन होते हैं। स्तनपोषित समुदाय की एक विशेषता यह है कि इनके सब जीवों के शरीर पर बाल होते हैं जो स्तनपोषित लोमहीन होते हैं जैसे छेल उनके भी मुँह पर भी दो चार बाल होते हैं। बालों का एक विशेष उद्देश्य शरीर की गरमी को कायम रखना है। इस समुदाय के किन्हीं किन्हीं जीवों के ऊन होती है। ऊन भी एक प्रकार का बाल है। ऊन के किनारे दाँतेदार होते हैं पर बालों के किनारे सीधे होते हैं। बालों के भी दो भेद हैं, एक तो वे जो कभी झड़ते नहीं हैं जैसे घोड़े की गरदन के अयाल और दूसरे प्रकार वे बाल होते हैं जो समय पाकर झड़ जाते हैं तथापि उनके स्थान पर नए बाल निकल आते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सब ही जानवरों के शुद्ध ऊन या बाल हों। बालों के स्थान पर मोटे काँटे और कड़े छिलके की तहें सी होती हैं। सेही के काँटे और आर्मिडिलो के शरीर के छिलके मूल रूप में बाल के परिवर्तित रूप हैं।

कुछ स्तनपोषित समुदाय के जीवों के सिरों पर सींग होते हैं जो हड्डियों के परिष्कृत रूप मात्र हैं। सींग भी दो प्रकार के होते हैं एक तो वे जो पतनशील होते हैं अर्थात् ऐन्टलर्स यानी प्रतिवर्ष गिर कर नए आने वाले। झाँक और साँभर के पतनशील सींग होते हैं। दूसरे प्रकार के स्थायी सींग "होर्न" होते हैं जो एक बार निकल कर आजीवन रहते हैं। ये सदा दुहरे होते हैं। इन पर एक खोल चढ़ा होता है जो बालों का ही एक रूप है। गैंडे के जो सींग होता है वह भी उसी पदार्थ का बना होता है जिसके बाल बने होते हैं। वह एक प्रकार से ठोस और अनेक बालों को मिला कर बनाया हुआ पदार्थ है।

स्तनपोषित समुदाय की एक विशेषता यह भी है कि उस समुदाय के जीवों के मुँह में प्रायः दाँत होते हैं। इस समुदाय में दाँतों का एक

विशिष्ट स्थान है। दाँतों के आकार प्रकार और रचना से जन्तु की जाति, आहार, स्वभाव आदि अनेक बातों का पता चल जाता है। दाँतों के चार प्रकार हैं:-

१- कृंतक दंत — Incisors
२- कीलें — Canines
३- दूध की डाढ़ें — Pre-molars
४- डाढ़ें — Molars

कृंतक दंत दोनों जबड़ों में सामने होते हैं और पेनी धेनी की ही इनकी धार होती है क्योंकि इनका काम काटने का है। प्रत्येक जबड़े में छः से अधिक कृंतक दंत नहीं होते; केवल थैली वाले जन्तुओं में किसी किसी जबड़े में ८ या १० तक होते हैं। रोमंथक श्रेणी (Ruminants) — जुगाली करने वाले — के जंतुओं के ऊपर के जबड़े में और दंतविहीन श्रेणी के दोनों जबड़ों में कोई भी कृंतक दंत नहीं होता। केवल कुछ चमगादड़ ही ऐसे हैं जिनके ऊपर और नीचे के जबड़े में समसंख्यक कृंतक दंत नहीं होते वरना बहुधा सबके समसंख्यक होते हैं।

कीलें नुकीले दाँत होते हैं जो कृंतक दाँतों के दोनों ओर एक एक होते हैं। शिकार करने वाले मांसभक्षी जन्तुओं के कीलें विशेष रूप से बड़े होते हैं। शिकार को जकड़ कर पकड़ लेना कीलों का मुख्य कर्तव्य है। किसी किसी के कीलें असाधारण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं जैसे सूअर की कोंपें। किसी किसी जाति में केवल नरों के ही कीलें होते हैं मादा के नहीं।

गालों में कीलों के पीछे दूध की डाढ़ें होती हैं। दूध की डाढ़ें तो दूध के दाँतों के साथ निकलती हैं। दूध के दाँतों में असली डाढ़ें नहीं होती। भिन्न भिन्न जन्तुओं की दूध की डाढ़ों के जबड़े में कमी होता है किसी पर एक शिखर और किसी पर दो शिखर उठे होते हैं। सबसे पीछे वाली दूध की डाढ़ को मांसडाढ़ कहते हैं, यह मांस के टुकड़े करने में बड़ी उपयोगी होती है। बिल्ली के वंश के जन्तुओं में विशेषकर

से यह डाढ़ बड़ी होती है। पर कुतरने वाले (Rodents) जीवों के दूध की डाढ़ें नहीं होती।

डाढ़ें, दाँतों की पंक्ति में सबसे पीछे होती हैं। किसी भी जबड़े में एक ओर तीन से अधिक कभी नहीं होतीं। डाढ़ों के एक से लगाकर [illegible] तक जड़ें होती हैं। घासपात भोजी जन्तुओं में, जिनको बहुत पीसना पड़ता है उनमें डाढ़ों की संख्या अधिक होती है और वे चौड़ी चकरी होती हैं। पर मांसभक्षियों को डाढ़ों की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती अतः उनके डाढ़ों की संख्या कम होती है। बिल्ली वंश के मुंह में एक ओर एक ही डाढ़ होती है। केवल कुछ ही जन्तु ऐसे हैं जिनके मुंह में डाढ़ें नहीं होतीं। डाढ़ें एक बार निकलकर वृद्धावस्था तक रहती हैं। केवल हाथी के ही पुरानी घिसी डाढ़ गिर जाने पर नई निकलती है। उसकी डाढ़ें जीवन में चार बार बदलती हैं क्योंकि लगभग आठ मन चारे का रस हाथी को रोजाना निकालना पड़ता है तब कहीं उसका पोषण होता है। जन्तुओं के दाँतों का विवरण लिखने की एक सरल विधि इस प्रकार है :-

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीलें $\frac{१-१}{१-१}$, दूध डाढ़ें $\frac{३-३}{२-२}$, डाढ़ें $\frac{१-१}{१-१}$ = ३०

लकीर के ऊपर वाले अंक ऊपर वाले जबड़े के एक एक ओर की संख्या बताते हैं और नीचे के अंक नीचे वाले जबड़े के एक एक ओर की संख्या बताते हैं। अतः बिल्ली के ऊपर वाले जबड़े में ३ कृंतक दंत दोनों ओर हैं, इतने ही नीचे हैं। ऊपर के जबड़े में दूध की डाढ़ों की संख्या प्रत्येक ओर तीन है और नीचे वाले में प्रत्येक ओर केवल दो ही डाढ़ें हैं।

स्तनपोषित समुदाय के जीवों के लगभग सब के ही चार टाँगे — हाथ पैर — होती हैं। पर जल स्तनपोषित जीवों के केवल अगली दो ही टाँगे होती हैं जिनसे वे तैरते हैं और वे पिछली टाँगों का काम पूँछ से ले लेते हैं। नभचर स्तनपोषित जीव अर्थात् चमगादड़ के हाथों की अँगुलियाँ झिल्ली को साधे रहती हैं। अब रही स्थल के स्तनपोषितों

की बात सो उनके हाथ पैर भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। किसी की अँगुलियों पर नाखून होते हैं जो मुड़े, तेज़, लंबे और मोथरे सब प्रकार के होते हैं। थलचर स्तनपोषित समुदाय के जीवों के नख भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। बिल्ली, शेर आदि के नख मांस की गद्दी में छिपे रहते हैं आवश्यकता पड़ने पर ही निकलते हैं। भालू और बिज्जू के नख मोथरे होते हैं और बाहर निकले होते हैं। घास पात खाने वाले जन्तुओं के खुर या सुम होते हैं इनमें भी कुछ 'सम संख्यक खुर वाले' जीव हैं जैसे सुअर, बारहसिंगा, हिप्पो और हिरन। विषमसंख्यक खुरवाले जीवों में गैंडा और टेपिर आदि हैं। ठोस खुर ही सुम कहलाते हैं जैसे गधे और घोड़े के।

सब स्तनपोषित जन्तुओं के मुँह में जिह्वा होती है जो स्वाद का सान कराती है। जीभ पर काँटे या दाने उसके भोजन के प्रकार पर निर्भर है जैसे बिल्ली के वंश की जिह्वा पर काँटों का होना। किसी किसी की जीभ में खड़े के समान बढ़ने की शक्ति होती है जिससे भोजन प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है। दंतविहीन श्रेणी के 'चींटी खोर' की जीभ ऐसी ही होती है ह्वेल की जीभ बाहर नहीं निकल सकती। किसी किसी की जीभ में ग्रासक शक्ति होती है और वे जीव जिह्वा से पकड़ कर वस्तु को मुँह में पहुँचा सकते हैं।

स्तनपोषित जीवों के बच्चों का पालन दूध पीकर होता है और सब मादाओं के स्तन होते हैं। कम से कम दो स्तन होते हैं और अधिक से अधिक बारह। अधिकांशों के स्तन पेट पर होते हैं पर किसी किसी के जांघों के बीच और किसी किसी के वक्षःस्थल पर भी होते हैं। गर्भ में भ्रूण का पालन माता के रक्त से नाल द्वारा होता है केवल दो वर्ग ऐसे हैं जिनके भ्रूण गर्भ में नाल से नहीं पलते। वे दो वर्ग हैं: एकछिद्री श्रेणी

अंडज (Monotremata) थैलीवाले जन्तु की श्रेणी (Marsupialia) एवं शिशी श्रेणी के जन्तु की माताएँ अंडे देती हैं और अंडे में से निकल कर बच्चे ही स्तन द्वारा पलते हैं जबकि थैलीवाले जन्तु की श्रेणी की माता अपूर्ण बालक को जन्म देती है। ये बच्चे माता की पेट की थैली में रह कर स्तनों से दूध पीकर पलते हैं।

स्तनपोषित समुदाय के जीवों की एक विशेषता यह है कि अनेक जीवों के बच्चों की आँखें जन्म के समय बंद होती हैं। यह प्रायः मांसाहारी जीवों के लिए लागू है। ~~जन्म के~~ कुछ ~~सिर्फ~~ स्तनपोषित जीवों के बच्चे जन्म के बाद ही चलने फिरने लगते हैं पर अधिक काफी समय तक माता-पिता की देखरेख में रहते हैं जैसे मानव के बच्चे। चाल ढाल की दृष्टि से भी स्तनपोषित जीवों में काफी भेद ~~विभिन्नता~~ है। कुछ तो 'अंगुलचर' होते हैं जो पैरों की गद्दियों की अंगुलियों पर चलते हैं कुछ 'पदतलचर' हैं जो पूरा तलवा भूमि पर रखते हैं। शेर, कुत्ता, बिल्ली अंगुलचर हैं, भालू पदतलचर है। तीसरे प्रकार के वे हैं जो न अंगुली पर चलते हैं न तलवे पर वरन् तलवे का कुछ भाग ही भूमि पर रखते हैं। बिज्जू, उदबिलाव इसी तरह चलते हैं।

खलचर स्तनपोषित जीवों के आकार अपेक्षाकृत बड़े होते हैं क्योंकि पानी में उन्हें कम परिश्रम करना पड़ता है पर स्थलचर स्तनपोषितों के आकार में बड़ा भेद होता है एक ओर हाथी है तो दूसरी ओर चुहिया है। वृक्षों पर रहनेवाले स्तनपोषित जीवों के शरीर प्रायः छोटे होते हैं।

विकास की दृष्टि से स्तनपोषी समुदाय काफी आगे है और संसार के सब प्राणियों में इनके मस्तिष्क सबसे अधिक विकसित होते हैं उनमें भी मनुष्य के मस्तिष्क का तो कहना ही है क्या। स्तनपोषी जीवों में मांसाहारी, शाकाहारी, कीटभोजी एवं सर्वभक्षी सब प्रकार के जन्तु हैं।

स्तनपोषी जीवों की इंद्रियाँ भी बड़ी प्रबल होती हैं जो उनकी [illegible] और रक्षा में सहायक होती हैं। इंद्रियों में आवश्यकता के अनुसार ही तीव्रता होती है। उदाहरण के लिए हाथी अपनी ओर आने वाली वायु से एक मील की दूरी के आदमी की गंध ले लेता है। हिरन आदि की

घ्राणेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय बहुत तेज होती हैं तब ही वे अपनी रक्षा कर पाते हैं। चमगीदड़ की झिल्ली त्वगेन्द्रिय का काम करती है। पक्षियों की सी दृष्टि शक्ति तो स्तनपोषितों को नहीं प्राप्त है पर फिर भी वह प्रायः अच्छी होती है, मांसाहारियों की कुछ जातियां तो रात में भी देख सकती हैं।

स्तन पोषी जीवों के आमाशय भी विशेष प्रकार की सीधी थैली जैसा होते हैं। केवल जुगाली करने वाले जीवों का आमाशय चार भागों में बंटा होता है। ये जन्तु पहले तो जल्दी जल्दी भोजन को निगल लेते हैं फिर सुविधा से जुगाली करते हैं तो भोजन के गोले आमाशय के दूसरे भाग में बन कर उसके मुंह में जाते हैं और तब मुंह में अच्छी तरह भोजन पिस कर आमाशय के तीसरे भाग में जाता है जहां से चौथे में हजम करने वाले रस में मिल कर आंत में चला जाता है और पोषण तत्व खींच लिया जाता है।

जीव जन्तुओं के रंग उनकी आवश्यकता और रहने के स्थान के अनुरूप ही होता है। प्रकृति ने जीव जन्तुओं के रंग उनकी भोजन प्राप्ति और रक्षा के लिए दिए हैं। शेर का रंग प्रगट करता है कि वह धूप बादल और जंगल का जानवर है। अपने रंग के कारण ही वह शिकार के अति निकट, शिकार द्वारा देखे बिना पहुंच जाता है। बाघ के जो गुल होते हैं उनके कारण वह झाड़ी में पहचाना नहीं जा सकता। गिरे हुए पेड़ों के तनों के पास खड़ा गैंडा आसानी से नहीं दिखाई पड़ता वह प्राकृतिक वातावरण के रंग में मिल जाता है। अफ्रीका का जिराफ अचल खड़ा हुआ आसानी से पहचाना नहीं जा सकता कि वह कोई जीव है या मिमौसा का वृक्ष। ऋतु के हिसाब से भी रंगों में परिवर्तन हो जाता है। शीतकाल में खरगोश और लोमड़ी का रंग अपेक्षाकृत श्वेत हो जाता है और बरफ के रंग में मिल जाता है, ऐसा न हो तो वे भूखों मर जाएं। मादा को अपने बच्चों और अंडे की रक्षा करनी होती है इसलिए अनेक मादाओं का रंग बहुत सादा होता है जैसे मोरनी और मुर्गी। यदि मोरनी और मुर्गी का का रंग मोर और मुर्ग के समान हो तो गीदड़ और

अन्य हिंस्र जीव उन्हें दूर से ही देखलिया करें और कदाचित वे दुनिया से ही मिट जायं।

जीव जन्तुओं के वर्गीकरण में उन्हें अबतक दो समूहों में (१) मेरुदंडीय और (२) अमेरुदंडीय में विभाजित किया है। मेरुदंडीय समूह को पांच समुदायों में विभक्त किया गया है। अब इस वैज्ञानिक वर्गीकरण में कुछ और आगे चलते हैं। स्तनपोषी समुदाय की ऊपर व्याख्या की गई है। स्तनपोषी समुदाय के जीव विशेष लक्षणों के आधार पर अनेक वर्गों में बांटे जाते हैं। जैसे जितने जुगाली करते हैं वे रोमन्थकर श्रेणी में और जितने मांसभक्षी हैं वे मांसभक्षी श्रेणी में। फिर प्रत्येक श्रेणी में अनेक वंश माने गए हैं जैसे मांसभक्षी श्रेणी में बिल्ली वंश, श्वान वंश और भालू वंश। इसी प्रकार प्रत्येक वंश के अंतर्गत कई कई जातियां होती हैं, बिल्ली वंश में जैसे शेर, बाघ, सिंह आदि।

फिर एक ही जाति के जीवों की रचना में भी भेद हो जाते हैं जैसे चरखा की जाति में दो प्रकार के जीव होते हैं, एक कद में छोटा और धारीदार होता है तो दूसरा कद में बड़ा और देह पर गुल होते हैं। अतः ये चरखा जाति के जातिभेद हुए। एक ही जातिभेद में भी रंग, रूप, भोजन से थोड़ा बहुत अंतर हो जाता है तब एक जातिभेद (Species) में दो या अधिक नसलें (Varieties) मानी जाती हैं। अतः हम देखते हैं कि जीव जगत के भेदोपभेद का क्रम इस प्रकार है:—

(१) समूह (Division) (२) समुदाय (Class)
(३) वर्ग (Order) (४) वंश (Family), (५) जाति (Genus), (६) उपजाति (Species) और नसल (Variety)

यहां यह बताना भी आवश्यक है कि जीवों के भेद इतने प्राकृतिक नहीं हैं जितने कृत्रिम हैं। विकासक्रम में मनुष्य ने अपनी आवश्यकता और प्रजनन शास्त्र के अनुसार भेद किए हैं। वैज्ञानिकों ने भी एक एक

बात को लेकर भेद किए हैं। किसी ने हाथ पैरों की रचना को आधार मान कर जीवों के भेदोपभेद किए हैं तो किसी ने मस्तिष्क को आधार माना है तो ~~किसी~~ कोई दाँत को ही आधार मानता है। ~~पर~~ हम ~~जिस~~ इसका ~~कार्य~~ ~~को~~ वैज्ञानिक पर सरल ढंग से ही विवेचन करेंगे। स्तनपोषी जीवों के बच्चे गर्भ में नाल से पलते है। माँ के शरीर से ~~का~~ नाल द्वारा भ्रूण को भोजन मिलता है, अतः हम स्तनपोषी जन्तुओं को दो खंडों में बांटते हैं:-

१- एक तो वे जो गर्भ में नाल द्वारा पोषित हैं जिन्हें हम 'प्लेसेण्टल' कह सकते हैं।

2- दूसरे वे जो गर्भ से अपूर्ण अवस्था में उत्पन्न होते हैं और बाद में माता के दूध से पलते हैं इन्हें हम 'इम्प्लेसेण्टल' कह सकते हैं। इस खंड में दो कक्षायें हैं (अ) एकधिद्री कक्षा (Monotremata) (ब) थैलीवाली कक्षा (Marsupialia)

नालपालित 'प्लेसेण्टल' जीवों का विवेचन अब हम प्रसिद्ध विद्वान ब्लाइथ के अनुसार करते हैं। ब्लाइथ के अनुसार कुछ नालपालित जीवों के मुँह में चारों प्रकार के दांत होते हैं जिन्हें 'टाइपोडानशिया' (Typodontia) कहते हैं जैसे बंदर, चमगीदड़, मनुष्य और मांसभक्षी जीव। कुछ नालपालित जीवों में दो ही प्रकार के दांत होते हैं जिन्हें 'डिप्लोडानशिया' (Diplodontia) कहते हैं ~~जैसे~~ और इन जीवों की शरीर रचना उत्तम नहीं होती जैसे चूहा, गिलहरी, बारहसिंगा, भेड़, गाय, बैल, हाथी, सुअर आदि शाकभक्षी। तीसरा प्रकार दांतों के अनुसार 'आइसोडानशिया' (Isodontia) का है जिनके सब दाँत एक ही आकार के होते हैं जैसे ह्वेल।

चारों प्रकार के दांत वाले 'टाइपोडानशिया' के जीवों में बन्दर चमगीदड़ को छोड़ कर शरीर पर बालों की एक ही तह होती है और मनुष्य को छोड़ कर इस समूह में दो श्रेणियाँ हैं:—

१- चौदस्ते, जिनमें बन्दर, वनमानुस और लीमर जातियाँ ~~है~~ आती हैं।

2- चमगीदड़, इस श्रेणी के सब जीवों के हाथ और भुजाएं झिल्ली से मढ़े होते हैं।

'टाइपोडानशिपा' के शेष जीवों के शरीर पर दो प्रकार के बाल होते हैं अर्थात उन की एक भीतरी तह होती है। इस भाग के भी दो उपभाग हैं अर्थात :—

१- मांसभक्षी जिनके नुकीले कीले तथा तेज डाढ़ें होती हैं और इनकी डाढ़ों पर नोकें नहीं होतीं।

2- कीटभक्षी, इस श्रेणी में छोटे छोटे स्तनपोषी प्राणी हैं जो कीड़ों मकोड़ों पर जीवित रहते हैं। मांसभक्षियों की अपेक्षा इनके मुंह में दांतों की संख्या अधिक होती है।

'डिप्लोडानशिपा' विभाग के जीव निम्नांकित चार कक्षाओं में विभाजित हैं :—

१- कुतरनेवाले जीव (Rodentia) इनके दो ही प्रकार के दांत होते हैं और कृंतक दांत तेज छेनी के समान होते हैं, डाढ़ें चपटी होती हैं।

2- दंतविहीन जीव (Edentates) इन जीवों की विशेषता यह है कि इनके मुंह कृंतक दांत और कीले होते ही नहीं हैं।

3- रोमन्थकर - जुगाली करनेवाले - (Ruminants) इस श्रेणी के सब जीव जुगाली करते हैं। इनके चपटी डाढ़ें होती हैं और ऊंट को छोड़ किसी के कृंतक दांत नहीं होते। पंजों के स्थान पर खुर होते हैं

४- मोटी खाल वाले (Pachydermata) जितने खुरवाले जुगाली नहीं करते वे इस श्रेणी में हैं जैसे घोड़ा, सुअर।

'आइसोडानशिपा' भाग में जल के मांसभक्षी स्तनपोषी जीव आते हैं और ~~[illegible]~~ इसके अंतर्गत एक ही वर्ग है।

१- सिटेशिया (Cetacea)

उपर्युक्त वर्णन को ~~हम यहां~~ सुविधा के लिए ~~[illegible]~~ यहाँ एक तालिका द्वारा ~~[illegible]~~ ~~समझाते हैं~~ भली भांति समझा जा सकता है :—

(क) नालपालित जीव (Placentals)

१. टाइपोडानशिया (Typodontia)
(चार प्रकार के दाँत वाले)

① प्रधान भागीय (Primates)

- चौदस्ते (Quadrumana)
- चमगीदड़ (Cheiroptera)

② द्वितीय भागीय (Secundates)

- मांस भक्षी (Carnivora)
- कीटभक्षी (Insectivora)

2. डिप्लोडानशिया (Diplodontia)
(दो प्रकार के दांत वाले)

① पंजोवाले जीव (Unguilata)

- कुतरने वाले जन्तु (Rodentia)
- दंतविहीन जीव (Edentata)

② खुरदा जीव (Ungulata)

- रोमंथकर (Ruminantia)
- मोटी खालवाले (Pachydermata)

3. आइसोडानशिया (Isodontia)
(एक प्रकार के दांत वाले)

सिटेशिया (Cetacea)

(ख) इम्प्लेसेण्टल (Implacental)

जिनके बच्चे नाल के द्वारा नहीं पलते

- थैलीवाले जन्तु (Marsupialia)
- एकछिद्री जन्तु (Monotremata)

उपर्युक्त वर्गीकरण से पाठकों को जीव जंतुओं के विकास ~~का वर्गीकरण से वि~~ का क्रम समझ में ~~सरल~~ प्रासाणी से आ जायगा। साधारण दृष्टि ~~बाह्य जगत~~ से ऐसा प्रतीत होता है ~~जाने~~ कि बलवान तथा क्रूर जीव ही अपना आधिपत्य जमाते हैं। पर ऐसी बात नहीं है। वास्तविक बात यह है कि जीवन के विकास क्रम में जो अपनी ~~पास पड़ोस के वातावरण~~ विकटवर्ती स्थिति के अनुकूल नहीं चलता वह जीवन संघर्ष में लोप हो जाता है और जितना ही विकसित प्राणी घास पात पर निर्भर रहता है वह उतना ही उन्नतिशील होता है। पुराने युग के विशालकाय उरगम जो अपने पास पड़ौस के जीवों का संहार करते थे मिट गए। पूर्व पुस्तकों और अजायब घरों में ही उनका अस्तित्व है। बढ़ती जानवर आबादी तथा सीमित तथा भोजन की सीमित राशि के कारण हाथी, गैंडा और टेपुर आदि भी ~~सतरे~~ लोप होने की सीमा पर पहुंच गए हैं। ~~[illegible]~~ पृष्ठों ऊपर लेखकने ~~लिखा~~ बताया है कि अन्य जानवरों के मिट जाने का भी पूरा खतरा है, पर फिर भी घास पात खाने वाले जानवर अपने विकास ~~[illegible]~~ क्रम में हैं।

~~[illegible]~~

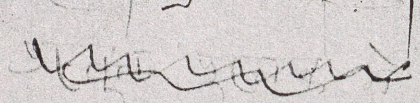

मांसभक्षी वर्ग (Order Carnivora)

मांसभक्षी वर्ग बड़ा विशाल है और वैज्ञानिकों ने इस वर्ग में उन सब नालपोषित प्राणियों को रखा है जिनका मुख्य आहार मांस है। इस वर्ग में बिल्ली वंश और उसकी जातियां, कुकुर वंश, भालू वंश, कस्तूरी वंश और चरखा वंश रखा है। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि भालू आदि ऐसे जीव भी हैं जो मांसभक्षी होने के साथ साथ फल फूल जड़ें और शहद आदि को भी अपनी खुराक में रखते हैं।

मांसभक्षी वर्ग के अधिकतम विकसित जीव खुश्की पर ही रहते हैं पर वैसे इस वर्ग में ऐसे जीव भी आते हैं जो खुश्की और पानी दोनों स्थानों में अपने आहार के कारण गतिशील होते हैं। उदाहरण के लिए ऊदबिलाव

मांसभक्षी वर्ग की विशेषतायें समझने के लिए उस वर्ग की विशेष बातें जानना आवश्यक हैं ताकि मांसभक्षी वर्ग के अतिरिक्त अन्य मांस खाने वाले जानवरों के प्रति कोई भ्रम न हो। सांप मगर आदि भी मांस खाते हैं पर उनका वर्ग दूसरा है क्योंकि वे नालपोषित नहीं हैं। मांसभक्षी वर्ग के सब जीवों की कुछ विशेष समानतायें हैं। इस वर्ग के सब जीवों के अंगुलियां होती हैं और उनमें मुड़े हुए तेज नाखून होते हैं। पंजों में अंगुलियों की संख्या कम से कम चार अवश्य होती है। इस वर्ग के जीवों के दांत मांस को पकड़ने चीरने फाड़ने के काम के होते हैं और कीले दृढ़ तथा विकसित होते हैं ताकि शिकार को मजबूती से पकड़ सकें। इस वर्ग के जीवों के ऊपरी और नीचे के जबड़ों में तीन तीन जोड़े कृंतक दांतों के होते हैं।

इस वर्ग के सब ही जीवों के पैरों में गद्दियां होती हैं और इस वर्ग के बिल्ली वंश के अनेकों प्राणियों में पैरों के नाखून गद्दियों में छिप जाते हैं। इस वर्ग के अनेक वंशों के विषय वर्णन में पर्याप्त भेद मिलेगा जैसे बिल्ली वंश की जीभ खुरखुरी होती है और कुत्ता वंश की जीभ मुलायम होती है जो यह प्रगट करती है यह वंश जीभ से मांस हड्डी से नहीं खरोंचता हड्डी तोड़ कर हड़पता है।

बिल्ली-वंश (Family Felidae)

बिल्ली-वंश में सिंह और शेर से लगा कर घर की बिल्ली तक आती है। चीते को छोड़ कर सब एक ही जाति में आते हैं। मांसभक्षी वर्ग में बिल्ली-वंश पूर्णरूपेण मांसभक्षी की परिभाषा में आता है। अपने शिकार का पीछा करने और खाने की दृष्टि से। फुर्ती, श्रवण शक्ति और दृष्टि भी उनकी गजब की होती है। घ्राण शक्ति अपेक्षाकृत तेज नहीं होती। इस वंश के जीवों के शरीर की रचना, अवयवों का गठन और उनकी चालाकी तथा अपने शरीर के अनुपात से कहीं अधिक बड़े शिकार को मारने और खींच लाने की क्षमता उनमें है।

इस वंश के जीवों के साधारणतया ३० दांत होते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है:-

$\frac{3}{3}$ कृंतक दांत, $\frac{1}{1}$ कीले, $\frac{3}{2}$ दूध की डाढ़ें, $\frac{1}{1}$ डाढ़ें। पर कभी कभी ऊपरी जबड़े में दो ही दूध की डाढ़ें होती हैं और तब कुल दांतों की संख्या २८ हो रह जाती है। इस वंश के सब ही जीवों के कुकुरदंत (कीले) बड़े ही दृढ़ और नुकीले होते हैं और चाहे वह घर की बिल्ली हो, चाहे विशालकाय शेर सबका मांस खाने का ढंग एक सा ही होता है। बिल्ली-वंश और मांसभक्षी वर्ग के अन्य वंशों के जीवों में मुख्य भेद दांतों का यह है कि बिल्ली वंश के जीवों के नीचे के जबड़े के कृंतक दांत सीधे पर अनुप्रस्थ पंक्ति में होते हैं, जब कि अन्य मांसभक्षियों में इन दांतों का दूसरा जोड़ा ऊपर को उठा होता है।

बिल्ली वंश के जीवों के पुट्ठों में सिकुड़ने की अद्भुत क्षमता होती है और स्प्रिंग की भांति उछल कर वे जानवर को पकड़ते हैं और उनके मुड़े तेज नख एकदम शिकार में गड़ जाते हैं। इन जीवों के पंजों में हर नाखून के नीचे एक गद्दी होती है तथा इन छोटी छोटी मखमल की भांति मुलायम गद्दियों के पीछे एक बड़ी गद्दी होती है। प्रत्येक नाखून इन छोटी गद्दियों में भीतर चला जाता है और इस प्रकार टूटने घिसने और खराब होने से बचा रहता है। इन्हीं गद्दियों के कारण इस वंश के जीव बिना आहट के बड़ी आसानी से चलकर अपना शिकार पकड़ लेते हैं।

बिल्ली वंश के प्राणियों की जीभ खुरदरी और कांटेदार होती है। कांटों का रुख भीतर को होता है जिससे हड्डियों से मांस खरोचने में बड़ी सहायता होती है।

जबकि कुत्ता वंश हड्डी को तोड़ कर सटकता है।

बिल्ली-वंश के जीवों की पुतलियाँ प्रकाश के अनुसार घटती बढ़ती रहती हैं जिससे वे अंधेरे में भी देख लेते हैं। धूप में पुतलियां छोटी हो जाती हैं और अंधेरे में बढ़ जाती हैं। इस वंश के मुंह पर जो बाल होते हैं जिन्हें मूंछें कहते हैं वे इस वंश के लिए बड़े उपयोगी होते हैं। इन मूंछों के बालों में विशेष चेतनायुक्त नाड़ी संस्थान होता है जिनसे बिल्ली वंश को मार्ग प्रदर्शन में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त जिस तंग स्थान से मूंछें निष्कंटक जाती हैं उस स्थान से इस वंश के जीव भी निकल जाते हैं। घर की बिल्ली अपनी मूंछों से तंग छेदों में होकर अपना रास्ता निश्चित करती है।

इस वंश के जीवों के रंग चिलाई लिए हुए लाल, बादामी, भूरा होता है। खाल पर धारियां या चित्ते होते हैं। बिल्ली वंश के जीवों का रंग काला नहीं होता, बस काला बघेरा ही अपवाद स्वरूप है पर चित्ते उस पर भी होते हैं।

बिल्ली वंश यों तो सारे भूमंडल में फैला हुआ है पर फिर भी भारत और अफ्रीका में ~~इनकी अनेक जातियां फैली हुई हैं~~ अधिक पाया जाता है। इस वंश के जीव पानी में घुसना पसंद नहीं करते और मजबूर होने पर ही पानी में घुसते हैं पर शेर और मछुआ बिल्ली इस बात का अपवाद हैं।

गीर सिंह

सिंह या शेर बबर (लौइन) जिसे केसरी भी कहते हैं अब भारतवर्ष में नहीं पाया जाता। प्राचीन संस्कृत साहित्य में सिंह या केसरी का ही वर्णन आता है। व्याघ्र या शेर (टाइगर) का नहीं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपमा भी केसरी से दी जाती है। आजकल भारत में जो सिंह पाया जाता है वह काठियावाड़ की गीर पहाड़ियों में ही सीमित है इसीलिए उसे गीर सिंह कहते हैं। कुछ दिनों पूर्व तक आबू की पहाड़ियों के आसपास वह आ जाता था अब भी कोई भूला भटका सिंह वहां मिल जाता है। गीर सिंह और अफ्रीकन सिंह में जो भेद है वह है उसके केसर — अयाल — के संबंध में। अफ्रीकन नर सिंह के गरदन और सिर तथा कंधों पर बड़े बड़े बाल होते हैं और गीर सिंह में उनका अभाव होता है। पर अफ्रीका में भी बिना अयाल के सिंह होते हैं और सेनीगल क्षेत्र में बिना केसर का सिंह पाया जाता है। कुछ लेखकों का मत है कि कुछ वर्ष पूर्व तक किसी किसी गीर सिंह के भी गरदन पर अयाल होते थे पर अब नर गीर सिंह के जो गीर की पहाड़ियों में सुरक्षित हैं केसर नहीं होते। भारत सरकार से गीर सिंह को सुरक्षा प्राप्त है अन्यथा वह भी लोप हो गया होता। उनकी संख्या भी सीमित है और इसीलिए उनको देखने वालों तथा पर्यटकों को कुछ कठिनाई होती है।

इस शताब्दी के प्रारंभ तक सिंह - शेर बबर - को पशुओं का राजा कहा जाता था, क्योंकि अपने अयालों के कारण वह बड़ा शानदार होता है और स्वभाव से बड़ा शरीफ दिखाई पड़ता है तथा आवश्यकता पड़ने पर बड़ा खूंखार भी होता है। पर बाद में सिंह को एक प्रकार से इस पद से च्युत कर दिया गया है। अफ्रीका में शिकार खेलने वाले प्रसिद्ध शिकारी श्री सेल्युअस ने लिखा है कि सिंह अपना सिर इतना ऊंचा करके नहीं चलता जितना किसी शानदार जानवर को ऊंचा रखना चाहिए इसलिए सिंह को पशुओं का राजा नहीं कहा जा सकता। पादरी डा. लिविंगस्टन ने भी उसके स्वभाव के विषय में उचित ही वर्णन किया है कि उसका स्वभाव नीच और कायरतापूर्ण होता है।

सिंह के केसर तीन वर्ष की अवस्था में शुरू होकर छः वर्ष की आयु तक बढ़ते रहते हैं। सिंह की आयु के विषय में यह अनुमान लगाया जाता है कि उसकी आयु तीस से चालीस वर्ष तक होती है। गीर सिंह तथा अफ्रीकन सिंहों का स्वभाव और शिकार मारने के ढंग एक से ही हैं और

स्थान विशेष के कारण थोड़ा अंतर हो जाने पर भी उनका रंग
~~के समान~~ रेगिस्तानी बालू का सा तनिक विलाई लिए होता है
जिससे स्पष्ट है कि वह मरुभूमि अथवा घास के क्षेत्र का
पशु है या ऐसे क्षेत्र का जहां पहाड़ी इलाके में घने जंगल
नहीं हों। सन् १८३० तक अहमदाबाद के आसपास सिंह साधारणतया
पाये जाते थे। सन् १८७३ में गुना (मध्यप्रदेश) में एक सिंह मारा गया था
और सन् १८६४ में इलाहाबाद से पश्चिम मील पश्चिम में शिवराजपुर
के निकट भी एक सिंह मारा गया था। जब सन् १८६६ में इलाहाबाद
से नवलपुर तक रेलवे लाइन बन रही थी तब एक बहुत बड़ा
अयालों वाला सिंह इलाहाबाद से अठारह मील दूर मारा गया था।
पंजाब के हरियाना क्षेत्र में उत्तरी और खानदेश में दक्षिण
की ओर मध्य राजपूताना के अनेक स्थानों में सिंह पाये जाते थे।
पूर्व की ओर कोसी तथा बिहार के पलामू में सिंह पाये जाते
थे। अनुमानतः पहले सिंह भारत के पश्चिमोत्तर और मध्य भाग
में फैला हुआ था।

शेर सिंह और अफ्रीकन सिंह के बारे में यह बड़ा
विवाद रहा है कि वे दोनों एक ही हैं अथवा भिन्न भिन्न हैं।
कितने लेखकों ने अपनी अपनी एक अलग राय दी है पर अंत में
यही निश्चय किया गया कि दोनों में कोई भेद नहीं है पर
केवल और कद की दृष्टि से इन दोनों को अलग मानने में
कोई आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। वैसे वैज्ञानिक दृष्टि से
अफ्रीकन और शेर सिंह में कोई भेद नहीं है। भारत से सिंह
के लुप्त होने के अनेक कारण हैं। बढ़ती आबादी और घास के
जंगलों के कटने तथा राजस्थान में अधेसाकुल पानी की कमी
हो जाने से सिंह मिट गया। पर मध्यभारत और इलाहाबाद के
आसपास से उसके हट जाने का एक कारण यह भी है कि
उसे शेर ने बढ़ने नहीं दिया। महाराज ग्वालियर ने अपने
जंगलों में अफ्रीका से लाकर कुछ सिंह छोड़े थे पर वे वहां पनप नहीं सके।
सघन जंगलों से तो शेरों ने उन्हें मार भगाया और बाहर
जंगली जानवरों की कमी से वे मनुष्यभक्षी हो गए तो
वे मार डाले गए। फल यह हुआ कि अफ्रीका मिलने पर
भी सिंह भारत में पनप नहीं सके। अफ्रीका में सिंह
अब भी बहुतायत से पाये जाते हैं जहां वे आठ आठ
दस दस की टोली में रहते हैं। सिंह अनिर्दिष्ट बंधे समय
पर दहाड़ते हैं और जमीन पर मुंह लगा कर जब भी दहाड़ते
हैं तो आसपास के जानवर भय से कांप उठते हैं और
उनमें भगदड़ मच जाती है। ऐसी दशा में सिंह उन्हें

सरलता से ही पकड़ लेते हैं। सिंह जब आदमखोर हो जाते हैं तब इतना परेशान करते हैं कि आदमी के काम में बाधा पड़ती है। अफ्रीका के मसाई जाति के लोग घेरा बांध कर हाथों में भाले और चमड़े की ढाल लेकर उनका शिकार करते हैं। वे सिंह को घेरे में घेर लेते हैं और जब सिंह तड़प कर आक्रमण करता है तब मसाई लोगों के भाले एकदम उसके शरीर में घुस जाते हैं और सिंह तड़प कर, सिकुड़ कर विंधे भालों से गिर जाता है।

सिंहों का भूरा रंग मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इनका सिर चपटा और बड़ा होता है अतः इनकी शकल बिल्ली से न मिलकर कुत्ते से मिलती है। सिंह की पूंछ पर काले बालों की झौरी गाय बैल की पूंछ की झौरी की तरह होती है। सारा शरीर तो सिंह का पीले से रंग का होता है पर कान के बाहरी भाग की जड़ के पास कुल कालापन होता है। बच्चों के शरीर पर धारियां सी होती हैं जो वयस्क होने तक गायब हो जाती हैं।

गीर सिंह की लम्बाई छः से साढ़े छः फुट तक होती है और ढाई तीन फुट लंबी पूंछ इससे अलग होती है। ऊंचाई में सिंह तीन साढ़े तीन फुट तक पाये जाते हैं। नर की अपेक्षा मादा लगभग एक फुट छोटी होती है। गीर सिंह शेर की अपेक्षा ~~भारी और~~ ऊंचे तो होते हैं पर शेर के बराबर भारी और मजबूत नहीं होते। हां, शेर की अपेक्षा दहाड़ में सिंह बड़े तेज़ होते हैं और नियमित समय पर दहाड़ते हैं। जिन इलाकों के आसपास आबादी नहीं होती वहां तो वे प्रातःकाल ९-१० बजे तक सुने जा सकते हैं। बदली वाले मौसम में तो रात बीत जाने के बाद भी दिन तक में सिंहों का गुर्राना मर्राना सुनाई पड़ता रहता है।

जब कोई सिंह अपने लिए मादा ढूंढ लेता है तो प्रायः जीवन पर्यन्त उसके साथ जोड़ा कायम रखता है। शिकार तो सिंह गिरोह बांध कर करते हैं। कुछ लोगों का यह भ्रम है सिंह मुर्दाखोर नहीं होते। वृद्ध हो जाने या किसी भी प्रकार से शिकार के अयोग्य हो जाने पर सिंह अगर गांवों के समीप रहते हैं तो आदमखोर हो जाते हैं। आदमी न मिलने पर भेड़ बकरियों को भी मारते हैं यहां तक कि वे चूहे आदि को भी पकड़ने लगते हैं और

तो और कभी कभी तो भूख से व्याकुल हो घास पर भी मुँह मार देते हैं। भारत जैसे देश में जब सिंह दो चार व्यक्तियों को मार कर खा जाता है तो भयंकर आतंक का वातावरण उन इलाकों में फैल जाता है। पर माता बेली जैसे युद्ध प्रिय कबीलों में ऐसी प्रथा नहीं है, और पालतू पशु का हत्यारा तथा आदमखोर सिंह अगर केवल बकरी तक को मार देता है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मौत आ गई। पूरा कबीला सिंह को घेर कर मार डालता है।

~~सिंह को पकड़ कर रखने की अवस्था में अगर उसके बच्चे होते हैं तो उनकी संख्या दो से छः तक होती है~~। भारत में अपनी प्राकृतिक दशा में सिंहनी दो या तीन बच्चे ही देती है। दक्षिण अफ्रीका में श्री सेल्यूअस के मत से सिंहनी के प्रायः तीन बच्चे ही एक बार में होते हैं जिन में से बाल्यावस्था में मरने वालों की संख्या भी कम नहीं है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि सिंह के बच्चों की आँखें जन्म के समय बन्द न होकर पूरी खुली होती हैं। बच्चे पाँच छः मास तक माता के संरक्षण में रहते हैं और फिर अलग होकर अपना जीवन स्वयं ही व्यतीत करते हैं।

सिंह को अगर ~~पकड़ कर~~ बाल्यावस्था में ही पकड़ कर पाला जाय तो वह शेर की अपेक्षा अधिक नम्र स्वभाव का होता है और अपेक्षाकृत अधिक पालतू बनाया जा सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से गीर सिंह और अफ्रीकन सिंह एक होने पर भी लेखक के मत से ~~अलग~~ भिन्न ही मानना चाहिए। गीर सिंह आकार लम्बाई और ऊँचाई में वे अफ्रीकन सिंह से छोटे होते हैं और शक्ति में बघेरे से कुछ ही अधिक ताकतवर होते हैं।

---

* कभी कभी पेड़ों से गिरे सूखे फल भी खा लेते हैं।

शेर

शेर को अंग्रेजी में 'टाइगर' कहते हैं और वह एक प्रकार से एशियाई जानवर है। हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों में इसे कहीं बाघ और कहीं बीतर कहते हैं। संस्कृत साहित्य में भी इसके लिए व्याघ्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत वांग्मय से स्पष्ट है कि शेर भारत में आर्यों के आगमन के बाद आया क्योंकि वेदों और वेदों के बाद के ग्रंथों में सिंह शब्द का ही प्रयोग मिलता है, व्याघ्र तो कालांतर में प्रयुक्त होने लगा था। अनेक लोगों की धारणा है कि सिंह शेर की अपेक्षा अधिक बलशाली होता है, पर वास्तविक बात यह है कि शेर शक्तिपुंज है और सिंह की अपेक्षा कहीं अधिक लड़ाकू, ~~क्रूर~~ खूंखार, क्रोधी, खूबसूरत, सुडौल, सुगठित तथा साहसी होता है। गरदन और कंधे के लम्बे बालों के कारण सिंह बेढब हुआ तो बड़ा शानदार मालूम पड़ता है पर मरमिटने की प्रवृत्ति में शेर, सिंह से कहीं आगे है। कई बार एक ही उम्र और स्वास्थ्य वाले सिंह और शेर में कुश्ती कराई गई। उन कुश्तियों में प्रायः शेर ही जीता। भयंकर क्रोध में ~~झपटकर~~ शेर का आक्रमण इतना विकट होता है कि सिंह को पछाड़ कर फाड़ डालता है।

एशिया में एक प्रकार से चार तरह के शेर होते हैं। मंचूरियन शेर, भारतीय शेर, ईरानी शेर और मलय का शेर। वास्तव में इन चारों का भेद वर्ग विशेष का भेद नहीं है वरन उनके वे चार प्रकार क्षेत्र विशेष और आकार के अनुमान लिये गए हैं। मंचूरियन शेर का समूर कुछ अधिक बड़ा और मुलायम होता है। ईरानी शेर और मलय के शेर कुछ छोटे होते हैं और रंग कुछ गहरा बादामी तथा धारियाँ अधिक काली होती हैं।

कुछ लोगों का भ्रम है कि भारत के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले शेरों में कुछ भेद है, पर यह बात ठीक नहीं है। हां, बंगाल में पाया जाने वाला शेर जिसे 'रायल बेंगाल टाइगर' कहते हैं अपेक्षाकृत बड़ा और स्वस्थ होता है। क्षेत्र विशेष और उचित मात्रा में खुराक मिलने के कारण उसके आकार में भेद हो गया है, वैसे शक्ति एवं स्वभाव में

वे सब एक से होते हैं। रींवा में सफेद शेर पाया जाता है। उसका रंग बादामी न होकर सफेद होता है और धारियां अस्पष्ट सी होती हैं। प्रकृति की विचित्रता के कारण ही उसका रंग सफेद हो जाता है पर सफेद शेरों की संख्या अति ही सीमित है। रींवा के स्व. महाराज वेंकटरमन सिंह के समय में रींवा के बाहर के लोगों को इस प्रकार के रंग का पता चला था और स्व. ~~महाराज~~ रींवा नरेश महाराज गुलाबसिंह ने भी एक सफेद शेर मारा था। रींवा का सफेद शेर एक विचित्र आकर्षक शेर है। सामान्य शेरों में पाया जाने वाला पिलछौंह बादामी रंग इन सफेद शेरों में नहीं पाया जाता। पहले ऐसे लगभग आधे दर्जन सफेद शेरों का ~~सीधी~~, रींवा, कोरिया और सरगूजा में शिकार हुआ है। ~~हिज~~ १९६१ में हिज हाईनैस महाराजा रींवा द्वारा एक बच्चा ~~पकड़ा गया~~ सफेद शेर का पकड़ा गया था। एक साधारण शेरनी से गोविंदगढ़ में इसका संयोग कराया गया जिससे चार बच्चे हुए पर वे चारों ही बच्चे साधारण पिलछौंह बादामी रंग के थे। इन्हीं चार बच्चों में से एक मादा का सफेद शेर से संयोग कराया गया तो चार बिल्कुल सफेद बच्चे हुए और दूसरी बार दो सफेद तथा एक साधारण बच्चा हुआ। इस प्रकार सफेद शेर के वंश के सब ही बच्चे जीवित हैं। भारत में जहां जहां सघन वन हैं, वहां-वहां शेर हैं। दक्षिण भारत में मैसूर, बम्बई का इलाका, मध्यप्रदेश, उड़ीसा का कुछ भाग, बंगाल, असम, बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान के कुछ भागों और उत्तरप्रदेश की तराई में शेर पाया जाता है। तराई से लगाकर हिमालय में ६-७ हजार फुट की ऊंचाई तक ~~शेर~~ शेर मिलता है।

पर शेर का इतना अधिक शिकार होता है कि इस बात की आशंका हो गई है कि भारतीय जंगलों की यह शान मिट न जाय। यह ख्याल गलत है कि शेर उत्तरप्रदेश की तराई के इलाके में तथा अन्य जंगलों में भरा पड़ा है। वास्तविक स्थिति यह है कि तराई के जंगल इतनी बुरी तरह काटे गए हैं और वहां पर इतने कृषि फार्म खोले गए हैं कि शेरों का विनाश सा ही हो गया है। शेरों के इक्के दुक्के जोड़े ईख के खेतों में रह कर अपना गुजारा करते हैं। तराई, हिमालय और मैदानी क्षेत्रों के बीच एक प्राकृतिक स्पंज के समान थी

वहाँ सघन बन थे। नरकल तथा अन्य ऊँची घासें और दलदल का ~~[illegible]~~ शेर जंगली जानवरों का स्वर्ग था। अल्प कालीन योजना की दृष्टि से और मनुष्यों की बढ़ती आबादी की आशंका से अधिक खाद्यान्न उपजाने के मोह में तराई के इस प्राकृतिक स्पंज को नष्ट सा कर दिया गया है और आशंका यही है कि बहुत जल्दी तराई में होने वाली खेती में अम्लता आ जायेगी तथा प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जायेगा। अस्तु, तराई शिकार के लिए अब स्वर्ग नहीं रह गया। इधर नैनीताल जिले में कौर्बेट पार्क के निकट बिजली और पानी की खातिर जो विशाल बाँध बाँधा जा रहा है उससे कौर्बेट पार्क के एक भाग के जलमग्न होने की आशंका है। वैसे भारत सरकार ने नैनीताल, देहरादून और सहारनपुर के बीच के जंगलों में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए हैं जहाँ शिकार खेलना वर्जित है। समय पाकर वे स्थान शायद दक्षिण अफ्रीका के क्रूगर पार्क के समान विकसित हो जायें। जब ऐसा हो जायगा तब भारत की वनश्री को असली हालत में देखने का ~~[illegible]~~ अवसर साधारण आदमी को भी मिल सकेगा।

शेर का रंग बादामी होता है, जिस पर आड़ी आड़ी धारियाँ होती हैं। पूँछ का रंग भी बादामी होता है, जो काली गड़ारियों से भरी रहती है। कान का बाहरी भाग काला होता है, जिस पर सफेद चित्ता पड़ा होता है। शेर का रंग छाती के नीचे सफेद होता है।

स्वस्थ और जवान शेर की लम्बाई नाक से पूँछ की जड़ तक साढ़े पांच फुट से साढ़े छः फुट तक होती है। अधिक शिकार खेले जाने के कारण अब शेर उतने बड़े और लम्बे नहीं मिलते। पहले ~~[illegible]~~ १२ फुट तक के शेर मिल जाते थे, पर अब साढ़े नौ साढ़े दस फुट तक के शेर मिल जाना भी सौभाग्य ~~[illegible]~~ की बात है। युवा शेर का वजन ३५० पौंड से लगाकर ५०० पौंड तक होता है। ऊँचाई के हिसाब से शेर की लम्बाई अधिक होती है - ऊँचा तो वह केवल साढ़े तीन फुट ही होता है।

शेरनी चार महीनों में अधिक से अधिक पाँच छः बच्चे तक देती है। बच्चा देने का यों तो कोई विशेष समय नहीं है फिर भी जाड़ों और गरमियों के प्रारंभ में उसके बच्चे पाये जाते हैं। शेर झुंड में नहीं रहता, प्रायः जोड़े में रहता है और अकेला भी रहता है। बच्चे मा के साथ तब तक रहते हैं जब तक शेरनी फिर

बचे न दे दे। इस बीच में शेरनी अपने बच्चों को शिकार
खेलना और जंगल की अन्य बातें सिखा देती है।

शक्तिपुंज शेर यदि भारतीय जंगलों से लोप हो जाय
तो भारतीय जंगलों का सबसे बड़ा आकर्षण ही मिट जायगा।
वैसे उसकी संख्या धीरे धीरे कम हो रही है। शेर की
शक्ति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि
वह बात-की-बात में बड़े-से-बड़े भैंसे को मार देता है।
शेर की थाप अगर किसी पहलवान की खोपड़ी पर पड़ जाय
तो उसका सिर उसके धड़ में घुस जायेगा। मामूली गाय को
तो वह ऐसे मुँह में उठा ले जाता है जैसे बिल्ली चूहे और
चिड़िया को मुँह में दाब कर भाग जाती है। इसके अतिरिक्त
शेर के पुट्ठों में भी ग़ज़ब की ताक़त होती है। वह
पहाड़ की ऊँची चढ़ाई पर भारी-से भारी भैंसे को खींच ले
जाता है। मामूली गाय को वह फुटबाल की तरह ६-६ गज
तक फेंक देता है। बढ़िया बैलों की जोड़ी-जो साठ मन
वजन से लदी गाड़ी को खींच ले जाती है-को शेर
बात-की-बात में मार देता है। पर शेर गाड़ी नहीं
खींच सकता क्योंकि शेर के पुट्ठों में झपट्टा धक्का
देने की ताक़त होती है-भारवाहन की ताक़त शेर में नहीं
होती।

शेर अपने शिकार को घात लगा कर ही मारता है।
अगर कहीं कोई जानवर चर रहा हो या खड़ा हो तो शेर
घात लगा कर ~~चुपके पंजे~~ पंजे के बल चलकर अपने को
बचाकर जहाँ तक झाड़ हो वहाँ तक झाड़ का सहारा
लेकर उसके इतने निकट पहुँच जाता है जहाँ से वह
छलाँग भर कर उस पर टूट पड़े। यदि कोई जानवर
शेर की ओर को ही आता हुआ या चला हुआ दिखाई
पड़ता है तो शेर घास में या ~~झुरमुट~~ झाड़ी की आड़ में
छिप कर बैठ जाता है और जानवर कोई मार की पहुँच
में आने पर उस पर टूट पड़ता है। घात लगाने में
कभी शेर को बहुत देर लग जाती है। उछलकर या
मौक़ा पाकर वह अपने शिकार की गरदन के नीचे मुँह
लगा देता है और ~~चुपके~~ पंजे पीठ पर। कीले गड़ाने के
साथ ही वह शिकार की गरदन विद्युत गति से घुमा
देता है जिससे शिकार की गरदन टूट जाती है और जानवर
तत्काल तड़प कर मर जाता है।

घने जंगलों में जहाँ शेर को पेड़ कमजोर
होते हैं और शेर को कूद कर जानवर की गरदन तोड़ने

का मौका नहीं मिलता वहां पर शेर जानवर की पिछली टांगों और कूल्हे को अपने नखों और जबड़े से तोड़ कर बेकार कर देता है और तब जानवर असहाय हो गिर पड़ता है। इस क्रिया को अंग्रेजी में "हैमस्ट्रिंगिंग" कहते हैं। शिकार पर झपट्टा मारते समय उसकी गरदन या पिछले भाग को तोड़ते समय और उसे गिराते समय शेर खूंखारी और क्रोध की साक्षात मूर्ति होता है। जानवर के गिरते ही शेर कभी कभी दो-चार मिनट सुस्ताता है और मरे जानवर की पूंछ रक्त की क्रिया के कारण फड़फड़ाती रहती है तो भयंकर क्रोध से उन्मत्त शेर पूंछ को तोड़ कर भी फेंक देता है। कभी कभी शेर शेरनी मिल कर भी शिकार खेलते हैं। प्रसिद्ध शिकारी स्व० कौर्बेट ने अपनी प्रस्तुत दो बड़े शेरों द्वारा एक बड़े हाथी के मार डाले जाने की चर्चा की है। जंगल में जंगली हाथी - बड़ा हाथी तक - शेर से बचते हैं और शेर हाथी से बचते हैं पर हाथी के बच्चे को अकेला पाकर शेर मार डालते हैं। बात यह होती है कि कभी कभी कोई हाथी का बच्चा चरते चरते झुंड से दूर हो जाता है तब ही शेर को मारने की मौका लग जाता है। हाथी के बच्चे ने यदि चिंघाड़ मार दी तो उसे सुन कर दंतैल हाथी या हथिनी उसकी सहायता को पहुंचते हैं और शेर उनके आगमन पर घायल बच्चे को छोड़ कर भाग जाते हैं। बच्चे को असहाय और बेबस समझ कुछ देर बाद जब हाथी छोड़ कर चले जाते हैं तब शेर उसे मजे से खाते हैं।

शेर सूअर के मांस को भी बड़े चाव से खाता है। सूअर भी बड़ा सूरमा होता है इसलिए कभी कभी दंतैल सूअर से शेर की मुठभेड़ हो जाती है। अपनी पिछली पहाड़ी या झाड़ी की बगल में करके सूअर खड़ा हो जाता है। शेर सूअर पर सहज ही सामने से सीधा आक्रमण नहीं कर सकता अन्यथा सूअर की कांपें शेर का पेट फाड़ दें। कभी-कभी तो सायंकाल से प्रातःकाल चार बजे तक सूअर और शेर का द्वन्द्व चलता रहता है, पर दिन निकलते ही सूअर को न जाने क्या जनून सवार होती है कि वह मैदान छोड़ कर अपने दिन के छिपाव के स्थान की ओर भागने लगता है तब शेर पीछे से बिजली की सी गति से झपट्टा मार कर उसे मार डालता है। कभी कभी शेर सूअर द्वन्द्व में सूअर की

कांपें शेर के पेट को फाड़ देती हैं और शेर सूअर द्वारा मारा जाता है ~~और~~ पर ऐसी घटनायें कम ही होती हैं।

शेर को प्रतिदिन भरपेट भोजन नहीं मिलता और उसके लिए भी उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है - प्रति रात १०-१०, १५-१५ मील चलकर जाना पड़ता है। सप्ताह में दो मोटे-ताज़े बैल वह आराम से मार कर खा सकता है। पर बैल और भैंसे पर शेर तब ही आक्रमण करता है जब नीलगाय, सूअर, हिरन आदि उसे नहीं मिल पाते। बहुत भूखा होने पर तो वह बन्दर, सेही और खरगोश तथा मोर तक खा जाता है। आम धारणा है कि शेर अपना मारा शिकार ही खाते हैं, पर बात ऐसी नहीं है। मरा और सड़ा मांस तो शेर को इसलिए अप्राप्य होता है क्योंकि दिन में गीध और रात में सियार उसे नहीं छोड़ते। अपना शिकार मारने के बाद या तो शेर उसे वहीं खाता है या किसी सुरक्षित स्थान में ले जाता है। भरपेट खा चुकने के बाद शिकार के अवशेष को वह ढँक कर रख देता है और प्रायः पास की किसी घनी झाड़ी में ही लेट कर उसकी रखवाली करता रहता है। साधारणतया शिकार खा लेने के बाद शेर पानी पीने काफ़ी दूर भी चला जाता है पर सायंकाल होते होते फिर लौट कर आ जाता है ~~और~~। दिन में यदि चरखे या गीदड़ उसके ढंके रखे शिकार के अवशेष पर आ जायें तो बिजली के समान तड़क कर झाड़ी से कूद कर उनका काम तमाम कर देता है। ~~कभी ऐसा भी होता है~~ - शिकारियों को और इन पंक्तियों के लेखक को भी इसका अनुभव है। ~~कि~~ लेखक को ऋषीकेश के एक जंगल में एक हिरन का पीछा करते हुए एक नाले से कुछ ऊपर जाकर गाय या बैल की टांग १५-२० गज दूर से ऊपर उठी हुई दिखाई दी। रुक कर जो देखने की कोशिश की तो शेर की गुर्राहट सुनाई दी। जब यह देखने के लिए कि गुर्राहट ~~किधर~~ किधर से आ रही है लेखक ज़रा ठिठका तो इतने ही समय में शेर तेज़ गुर्राहट के साथ ~~लाश~~ पूंछ को आसमान की ओर उठाये हुए लाश के पास आ खड़ा हुआ मानो ~~यह कह रहा हो~~ अपने भोजन के निकट आनेवाले को मरने मारने की चुनौती दे दी हो। बचने की खातिर नाले से नीचे एकदम कूद कर शेर की आंखों से ओझल होने में ही लेखक ने खैर ~~थी~~ समझी। तीन घंटों बाद हांके से उस शेर को मारा गया। ~~उस समय तो वह फायर करने देने का मौका देने से पहले ही आ दबोचता।~~

शेर की मुठभेड़ कभी कभी जंगली कुत्तों से हो जाती है। उसकी मारी लाश पर जब कुत्ते आ जाते हैं तो शेर बिगड़

पर उन पर दूर पड़ता है। पर ऐसा करना शेर के लिए खतरा को चुनौती देना है। जंगली कुत्ते कि शेर का पीछा नहीं छोड़ते, वे मरने से नहीं डरते और दो तीन दिन तक जब तक शेर को मार नहीं लेते तब तक उसके पीछे ~~पड़े रहते~~ लगे रहते हैं।

शेर आदमखोर भी हो जाते हैं। उनके आदमखोर होने के दो विशेष कारण हैं। जब कोई शेर घायल हो जाता है और उसका कोई ~~विशेष~~ अंग कमजोर पड़ जाता है तब गाय बैल तथा अन्य बड़े जानवर वह आसानी से नहीं मार सकता। ऐसी हालत में वह आदमखोर बन जाता है। दूसरा कारण है, सेही। सेही जब शेर आक्रमण करता है, तो सेही के कांटे उसके पंजों या टाँगों में घुस जाते हैं। सेही के कांटे गलते नहीं हैं जैसे बबूल के या लकड़ी की फांस गल जाती है - वे वहीं बने रहते हैं और घाव में पीव पड़ जाता है। तब शेर का वह भाग निकम्मा हो जाता है और वह मजबूरी में आदमी-जैसे कमजोर ~~सरल~~ शिकार को पकड़ना शुरू कर देता है। शेर के आदमखोर होने का एक अन्य कारण भी है ~~कि~~। यदि किसी ने शेर या शेरनी को घायल कर दिया तो वह आराम की खातिर घास या झाड़ी में जा छिपता है। घास काटने वाला या कोई यात्री जब उधर से छिपे शेर के निकट से गुजरता है तो शेर अपने ऊपर आक्रमण की संभावना समझ घसियारे या यात्री पर टूट पड़ता है। बस, उस दिन के बाद से मनुष्य का भय उसमें नहीं रहता। वह समझ जाता है कि जिस मनुष्य से वह इतना डरता था वह मनुष्य कितनी आसानी से ~~सरलता~~ से मारा जा सकता है। बुढ़ापे के कारण या यों कहना चाहिए कि शक्ति की क्षीणता ही शेर के आदमखोर होने के कारण हैं। शेरनी भी इसी भाँति आदमखोर हो जाती है। पर शेरनी का आदमखोर होना अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि वह अपने छोटे बच्चों को भी आदमी का मांस खाना सिखा देती है और उस स्वाद में वे इतना पसंद करते हैं कि वे ~~जन्मजात~~ से ही आदमखोर बन जाते हैं। कोई भी समझदार शिकारी इसी कारण घायल शेर को बिना मारे नहीं छोड़ता। जैसे शेर आदमी से घबराता है और यदि शेरनी के साथ बच्चे न हों, तो वह भी आदमी से कतराती है।

लोगों में शेर के विषय में यह भी एक भ्रम है कि शेर शेर को मार कर नहीं खाता, पर बात ऐसी नहीं है। ~~भेड़िये~~ भूखे और खंखाड़ भेड़िये की प्रसिद्ध है पर भूखा शेर भी साधारण समाज ही होता है और जंगलों में कभी कभी शेरों की लड़ाई हो जाया करती है। पराजित शेर को यदि

विजयी शेर भूखा होता है तो खा जाता है। कई लेखकों और शिकारियों ने इस बात की चर्चा अपने लेखों में की है। पर इन पंक्तियों के लेखक ने भी ऋषीकेश के जंगल में एक ऐसा दृश्य देखा जो स्मृतिपटल पर सदा अंकित रहेगा। एक छोटे से जलाशय के पास एक ऊँचे पेड़ पर ~~बैठ कर~~ जानवरों के स्वभाव अध्ययन करने हेतु लेखक बैठा था। सूर्यास्त से कुछ पहले ही ~~एक~~ शेरनी ~~और एक~~ और शेर एक की जोड़ी ~~एक~~ आपस में स्नेह का प्रदर्शित करती वहाँ आई कि एक दूसरा शेर वहाँ आ टपका, शायद वह शेरनी को हथियाना चाहता था। दोनों शेरों में लड़ाई छिड़ गई, शेरनी अलग खड़ी हो गई। दस मिनट के भीतर ही भँभोड़ने, काटने, दाँतों और नखों के प्रयोगों से दोनों शेर ~~[illegible]~~ बुरी तरह घायल हो गए पर आगन्तुक शेर को शेरनी के साथवाले शेर ने मार डाला और मारने के बाद उसका काफ़ी भाग खा भी लिया। शेरनी लाश के समीप नहीं आई। मांस खाकर पानी पीकर लोट पोट कर शेर शेरनी के साथ लंगड़ाता हुआ पास के जंगल में ही विलीन हो गया।

शेर का शिकार बड़ा ही उत्तेजक और मनोरंजक होता है। यों तो शेरों के स्वभाव एक से होते हैं पर फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक शेर की प्रतिक्रिया एक सी परिस्थिति में क्या होगी। कोई शेर ठीक प्रबंध से अपने अनुमान के अनुसार हाँका जा सकता है, पर कोई शेर पीछे भी लौट सकता है। शेर को शिकार करने के अनेक तरीके हैं। साधारण आदमी खतरा उठा कर बड़ी प्रतीक्षा के बाद छिपे स्थान में बैठकर उसका शिकार कर लेते हैं और जिन लोगों के पास समय तो कम है पर साधन सम्पन्न हैं वे हाँका करके शेर मार लेते हैं। गत द्वितीय महायुद्ध से पूर्व एक शेर को मारने का औसत खर्च एक हजार रुपया प्रति शेर आता था। तीन सौ चार सौ आदमी इकट्ठे करना, उनकी मज़दूरी देना, भैंसा खरीदना और ~~[illegible]~~ यातायात आदि में काफ़ी खर्च पड़ जाता था। शेर के शिकार करने के ढंग और शेर के शिकार की कहानियाँ इतनी रोचक और इतनी अधिक हैं कि उनको एकत्र करने से कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। अंग्रेजी में तो इस विषय पर अनेक पुस्तकें हैं। ~~लेखक ने जिन पुस्तकों को पढ़ा है उनकी सूची परिशिष्ट में दी गई है पर सूक्ष्म रूप से शेर के शिकार खेले जाने के प्रति प्रचलित ढंगों को दिया जाता है।~~

शेर के शिकार के लिए पहले नाले में शेर के खोज दख लिये जाते हैं

तो किसी पेड़ पर उसके निकलने के संभावित स्थान से कुछ दूरी पर मचान बना लिया जाता है। समझदार शिकारी मचान को १८-२० फुट की ऊँचाई पर बाँधते हैं। शाखों में चारपाई रख दी जाती है या डंडे बाँध दिये जाते हैं। चारों ओर से पत्तों से ढँक कर वह स्थान स्वाभाविक सा बना दिया जाता है। सामने शेर के मार्ग में भैंस का पड़रा या बकरा बाँध लेते हैं। पड़रा बाँधना अधिक अच्छा होता है। पड़रे को सींगों या गरदन में बाँधना ठीक नहीं क्योंकि शेर उस स्थिति को अप्राकृतिक समझ कर पड़रे को कभी कभी छोड़ देता है। पड़रे की टाँग में मजबूत रस्सा बाँध कर पेड़ से बाँध दिया जाता है। शेर आता है और शिकारी कभी कभी तो पड़रे पर उसके आक्रमण से पूर्व ही उसे मार देता है। जो इतनी देर रात में बैठकर प्रतीक्षा नहीं करना चाहते वे एक या दो पड़रों को उचित स्थानों में बाँध कर चले आते हैं। प्रातःकाल जाकर देखते हैं कि शेर ने कोई मार की है या नहीं। यदि शेर किसी पड़रे को मार देता है और यातने उसे वहीं खाकर अवशेष को छोड़ देता है तो मचान बना कर वहाँ शेर मार लिया जाता है। कभी कभी शेर पड़रे के एक भाग को खाकर शेष को खींच कर झाड़ी में छिपा देता है। ऐसी दशा में उसकी लाश को खुले स्थान में रख कर या फिर जहाँ पड़ी है वहीं शेर को मारने की व्यवस्था की जाती है। कभी शिकारी शेष लाश की टाँग आदि को रस्सी से बाँध देते हैं ताकि शेर एकाएक लाश के अवशेष को झाड़ी की ओट में न खींच ले। मचान पर बड़ी सावधानी से बैठा जाता है और किसी भी प्रकार की कोई भी आहट नहीं की जाती। शेर सूर्यास्त के समय ही प्रायः लाश पर आता है और तब उसका मारना आसान भी होता है पर घने जंगलों में वह चार पाँच बजे शाम को ही अपनी लाश पर आ जाता है।

शेर का शिकार पैदल भी होता है पर पैदल शिकार खेलना बड़ी ही होशियारी का काम है जिसे बड़े अनुभवी शिकारी ही खेलते हैं। प्रसिद्ध शिकारी स्व. मेजर कोर्बेट जिन्होंने तराई और कुमाऊँ में शिकार खेलने में बड़ी ख्याति पाई प्रायः अकेले और पैदल शिकार खेला करते थे। पर वे जंगली जानवरों और शेर के स्वभाव और जानवरों पेलियों के बड़े विशेषज्ञ थे। जहाँ पर आठ-आठ दस-दस फीट ऊँची घास होती है और आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता वहाँ पर हाथियों की पंक्तियाँ बना कर

एक तरफ से हांका किया जाता है तब ऊंची घास शेर शोर गुल से परेशान होकर ऊंची घास से बाहर निकलता है और हौदे पर बैठा शिकारी उसे मार लेता है। कभी कभी ओछा निशान पड़ने पर क्रोधित शेर भयंकर आक्रमण करता है। हाथियों की पंक्ति मेघमाला सी दिखाई पड़ती है और क्रोधित शेर उसमें बिजली की तड़प सा चमक कर किसी भी हाथी पर झपट बैठता है और गरदन तथा बगल से मांस नोच लेता है। वातावरण कंपित हो उठता है। हाथी घबरा कर लंडे और पेशाब करता हुआ भागता। फीलवान अंकुश पर अंकुश मारता है और कभी कभी हाथी बेकाबू हो जाता है। ऐसे शिकार में सधे हुए हाथियों का ही प्रयोग किया है। देखा गया है कि ऐसे मौकों पर हथिनियाँ अधिक उपयुक्त होती हैं। कभी कभी तो हाथी की एक लात ही शेर का कचूमर निकाल देती है।

गाँव वाले शेर की मारी लाश पर जहर डाल देते हैं जिसे खाकर वह बाद में मर जाता है। भारत के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न समयों में शिकार खेला जाता है। उत्तर प्रदेश और तराई के इलाकों में जाड़ों में शेर का शिकार अच्छा होता है और मध्यप्रदेश में गरमियों में। गरमियों में पानी सीमित स्थानों में मिलता है, पेड़ों से पत्ते गिर जाते हैं, जिन पर शेर के चलने की आहट मालूम हो जाती है। साधन सम्पन्न लोगों का अति प्रचलित तरीका शेर मारने का हांके का ही है। जब शेर बंधे हुए पड़रे को रात में खा लेता है तो पानी पीकर वह अपने शिकार से कभी कभी दूर कभी करीब ही झाड़ी में जाकर सो जाता है। शिकारी मालूम कर लेते हैं कि शेर अमुक स्थान में होगा और फिर निश्चित स्थान पर या तो हाथी पर या पेड़ पर शिकारी बैठ जाते हैं और विशिष्ट अतिथि के मचान की ओर से ही शेर को निकलने को बाध्य किया जाता है। कई सौ हांका करने वाले अर्धवृत्ताकार पंक्ति में शेर के संभावित सोने की जगह से सिग्नल मिलने पर शोर गुल करते हुए आगे बढ़ते हैं। शोर गुल तो शेर तो बिल्कुल पसंद नहीं है। हांका प्रारंभ करने से पूर्व शेर के निकलने के विभिन्न मार्गों में दूर दूर पर आदमी पहले से बैठ जाते हैं जिनको रोक करने वाले आदमी ('स्टाप') कहते हैं। कनस्तर बजते हैं और कभी पाम भी किए जाते हैं। शेर शोर सुन कर बैठ जाता है फिर शोर को अपनी ओर आता देख वहां से चल पड़ता है। अगर वह निर्दिष्ट मचा की ओर न चल कर

किसी दूसरी ओर चलता है तो पेड़ पर बैठा ~~हुआ~~ ऐसे के रूप में बैठा आदमी लकड़ी से पेड़ पर ठक ठक करता है। शेर चौकन्ना होकर उस मार्ग को छोड़ दूसरी ओर चलता है। आगे बढ़ कर वह फिर मार्ग बदलना चाहता है तो वहाँ पर भी पेड़ पर बैठा आदमी 'इधर' 'इधर' की आवाज से उसे निर्दिष्ट मचान की ओर जाने को प्रेरित करता है। पीछे शेर गुल को बढ़ता सुन शेर अपनी गति तेज कर देता है अन्यथा मंद गति से ~~मचान~~ जाता है। मचान प्रायः जंगल के रास्तों में ही प्रशस्त मार्ग पर ही बनाया जाता है। खुले स्थान पर जाने पर शेर प्रायः पहले ठिठकता है ताकि वह यह देख ले कि खुले मार्ग पर कोई है तो नहीं। मचान पर बैठने वाला शिकारी या तो शेर को खुले में आते ही मार लेता है या बिल्कुल खुले जाने के बाद मार पाता है।

बाघ

अंग्रेजी में जिसे हम 'लैपर्ड' या 'पैंथर' कहते हैं, उसे हिन्दी में बाघ, तेंदुआ या गुलदार कहते हैं। बहुतों का खयाल है कि लैपर्ड और पैंथर दो अलग अलगे जानवर हैं पर वे असल में एक ही हैं। छोटे बाघ को लैपर्ड और बड़े बाघ को पैंथर कह देते हैं। जिस जानवर का पेट अच्छी तरह नहीं भर पाता उसका आकार छोटा रह जाता है और जंगल में मजे से रहनेवाला भरपेट खानेवाला बाघ मोटा ताजा हो जाता है। यदि सौन्दर्य-प्रतियोगिता के लिए जंगल के सम्पूर्ण जानवरों की नुमाइश की जाए, तो सुन्दरता का प्रथम पुरस्कार बाघ को ही मिलेगा।

बाघ के बदन का रंग हल्का बादामी या हल्का भूरा होता है, जिसमें सुर्खी मायल सफेदी होती है। छाती का रंग बिल्कुल सफेद होता है और सारे बदन पर गोल चित्तियां होती हैं। सर, पैर, पेट और पेट के निचले भाग की चित्तियाँ तो बिल्कुल काली होती हैं, पर पीठ और पूछ के दोनों बगल के चित्ते छल्ले जैसे होते हैं जिनके बीच का रंग पीला होता है। बाघ के बच्चे भूरे रंग के होते हैं और उनके बदन के चकत्ते प्रारंभ में हल्के रंग के और अपेक्षाकृत घोटे होते हैं।

शेर जिस प्रकार घने जंगल और लंबी घास का जानवर है, उसी तरह बाघ अपने चकत्ते और रंग के हिसाब से झाड़ियों और चट्टानों का जानवर है। यों तो वह घने जंगलों में भी रहता है, पर उसके लिए थोड़ी सी जगह में भी अपने आपको छिपा लेना बड़ी आसान बात है। बाघ, शेर की अपेक्षा कहीं अधिक चालाक और धूर्त होता है, इसी दृष्टि से उसे जंगल का चाणक्य कहते हैं। अपने द्वारा मारे गए शिकार पर बाघ दुबारा एकदम नहीं आता — बहुत दूर से चक्कर लगाना शुरू करता है और चक्कर के घेरे को घटाता हुआ, पेड़ों के ऊपर चारों तरफ देखता हुआ आता है, तिस पर भी तनिक से संदेह पर फिर नहीं आता। बाघ की अत्याधिक सतर्कता का अर्थ यह नहीं है कि वह बहादुर नहीं होता, मौका पड़ने पर वह बड़ी बहादुरी दिखाता है। पहले तो वह आदमी से बचता ही है पर घायल अवस्था में क्रोधित होकर हाथी पर भी हमला करने से नहीं चूकता। फुर्ती का तो बाघ पुतला है। लंबी छलांगे मारना और बहुत तेज दौड़ना उसके लिए

साधारण बातें हैं। बाघ पेड़ पर चढ़ने में भी बड़ा प्रवीण होता है और बात की बात में पेड़ पर जा बैठता है। दुफंकी या तिफंकी शाखाओं पर बैठकर आराम करना बाघ बहुत पसंद करता है। चहाने और झाड़ीदार इलाक़ा जहाँ कहीं कहीं पेड़ हों उस पर रहना उसे पसंद है। और चीतल, हिरन आदि जब पेड़ के नीचे चरते चरते आ जाते हैं तब कूद कर उनका शिकार कर लेता है। अपने शिकार को जबड़ों से पकड़ कर सबसे पहले वह उसकी गरदन तोड़ने का प्रयत्न करता है। भेड़, बकरी, कुत्ता घोड़ा, गाय, बैल, मोर, मुरगी और खरगोश बाघ की खुराक हैं। बड़ा बाघ तो साधारण भैंस को भी मार देता है। ~~घने जंगलों और झाड़ियों में आकर सोता है~~। चहान की गुफाओं और पेड़ों पर जहाँ छिपाव का स्थान हो वहाँ वह अपना घर बनाता है। सायंकाल के समय जब गाँवों को वापस जाने वाले पशु लौट रहे होते हैं तो बड़ी आसानी से उन्हें दबोच लेता है।

बाघों के आकार में बड़ा भेद होता है। साधारण बाघ की लम्बाई पाँच फुट से छः फुट तक होती है पर किन्हीं किन्हीं बड़े नरों की लम्बाई नाक की नोंक से लगा कर पूँछ के सिरे तक आठ फुट तक की भी पाई गई है। बाघ की पूँछ शरीर के अनुपात से बड़ी होती है, और ७ फुट ११ इंच लंबे एक बाघ की पूँछ ३ फुट २ इंच थी। लेखक ने टिहरी गढ़वाल में सन् १९२३ में एक बाघ ७ फुट ९ इंच का भिलंगना के किनारे मारा था जो पहाड़ी गाँवों के निवासियों की भैंसे तक मार कर खा जाता था। बाघ की ऊँचाई लगभग दो फुट होती है।

क्रूरता में बाघ, सिंह और शेर से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा होता है। शेर तो शिकार केवल भूख बुझाने की खातिर ही करता है और पेट भर जाने पर फिर किसी को नहीं मारता, पर बाघ भूखा न होने पर भी मारने की खातिर ही मारता है। कभी कभी भेड़ों के बाड़े में घुस कर १५-१५, २०-२० भेड़ें मार कर और थोड़ा सा खून पी कर ही छोड़ जाता है। अपने मारे शिकार को वह गिद्धों और सियारों से बचाने के लिए झाड़ियों और पत्तों में तो छिपा कर रखता ही है पर कभी कभी पेड़ों पर भी टाँग लेता है। शेर को पानी में बैठना और स्नान करना पसंद है पर बाघ पानी से बचता है तथापि बहुत मजबूर हो जाने पर ही नदी को तैर कर पार करता है। इतना चालाक होने पर भी बाघ इतना निडर है कि यदि उसके शिकार पर लालटेन रख कर शिकारी दूर छिप कर बैठा हो

तो लालटेन की रोशनी में भी अपनी मार आ धमकता है।

भारत में बाघ पंजाब के मैदानी इलाकों को छोड़ कर सब जंगलों में पाया जाता है। अपनी चालाकी के कारण भारत से उसके मिट जाने की भी कोई आशंका नहीं है। गाँवों, छावनियों और कैम्पों से वह मालिकों के देखते-देखते कुत्ता उठा ले जाता है। इतने वेग से आक्रमण करता है और थाप मार कर कुत्ते को इतनी दूर फेंक देता है कि कुत्ता मर जाता है, बस झपटे से मुँह में दाब कर फिर वह भाग जाता है। जब बाघ लंगूर का शिकार करता है तब तो दृश्य देखते ही बनता है। एक डाली से दूसरी डाली पर कूद कर वह लंगूर को घबरा देता है। तब लंगूर पेड़ से नीचे कूद पड़ता है और बाघ ऊपर से उसके ऊपर टूट पड़ता है। कभी कभी पेड़ के नीचे से ही गुर्रा कर बाघ लंगूर को इतना डरा देता है कि लंगूर पेड़ से नीचे आ गिरता है। अपनी शिकार के मारने के बाघ के विचित्र तरीके हैं। गढ़वाल और कुमायूँ के पहाड़ी क्षेत्र में जहाँ मकानों की दो ढलवाँ और स्लेट के टुकड़ों की बनी होती हैं वहाँ अगर बाघ को भेड़ों की गंध मिल जाय तो वह छत की स्लेटें उखाड़ कर कमजोर तख्तों को हटा कर छत में छेद कर लेता है। छेद में से फिर वह भेड़ों पर कूद पड़ता है और मनमाने ढंग से पेट भर कर उसी छेद से बाहर निकल जाता है। कुत्ते का मांस बाघ को बड़ा प्रिय है। गाँव के बाहर जब कुत्ते उसे देख लेते हैं तो बाघ डरने का स्वांग रच कर भागने का नाटक करता है। कुत्ते उसका पीछा करते हैं तब कुछ दूर निकल जाने पर एक दम मुड़ कर उन पर आक्रमण कर देता है और किसी न किसी कुत्ते को ले भागता है। कुत्तों के पकड़ने में तो वह इतनी धृष्टता दिखाता है कि बरामदों और मकानों के अहातों से घरवालों के सामने फुर्ती से कुत्ता बाहर फेंक कर उठा ले जाता है। कभी कभी तो उसकी धूर्तता इतनी बढ़ जाती है कि मकान में बंधे भेड़ों और बकरों को छत पर चढ़ कर भीतर से लपक कर चुरा ले जाता है। ~~बघेरे की धूर्तता का एक उदाहरण~~ लेखक को एक बार एक अति धूर्त और धृष्ट बघेरे से पाला पड़ा। सन १९२५-२६ की बात है, टिहरी गढ़वाल के दयारे नामक स्थान में तत्कालीन टिहरी राज्य के चीफ कंजरवेटर श्री जोशी के घर से एक बघेरा प्रतिदिन एक बकरा या भेड़ा ले जाने लगा। जोशीजी बकरे और भेड़ के मांस के शौकीन थे इसलिए उन्हें पालते भी अवश्य थे। जब उनके कई जानवर बाघ ले गया तब उन्होंने कई

शिकारियों को बुलाकर उसको मारने का प्रबंध किया। मेढ़ा या बकरा बँगले से बाहर पास ही नाले में बाँधा जाता। शिकारी छिपकर बैठते और प्रकाश की खातिर लालटेन इस प्रकार रखते कि बकरा या मेढ़ा तो दिखाई पड़ता रहे पर शिकारियों पर रोशनी न पड़े। बघेरा आता और अँधेरे में से इतना तेज झपट्टा मारता कि रस्सा टूट जाता और बाँधा गया जानवर बाघ ले उड़ता। इस प्रकार लगातार होते रहने से बाघ इतना ढीठ हो गया कि आदमियों की चिंता न कर ८-१० दिन तक बकरे को ले जाता और गोली न लग पाती। अंत में जोशी जी के आग्रह पर लेखक ने उस बघेरे को बड़ी आसानी से मारा। कोठी के बाहर अमरूद के पेड़ से कुत्ते की कमर में मजबूत रस्सी बाँध कर रस्सी को पेड़ से बाँध दिया और कुत्ते की गरदन में दो मजबूत जंजीरें बाँध कर दो खूँटों से दोनों तरफ बाँध दीं। जंजीरें और रस्सी इतनी मजबूती से बाँधी गई थी कि बघेरे के झपट्टे से कुत्ते का कोई अंग भले ही टूट या कट जाय पर रस्सी और जंजीरों वाले खूँटे न उखड़ें। लालटेन अपनी ओर को कागज लगा कर एक स्टूल पर रख दी गई। बँगले के दुछत्ते पर बैठकर बाघ की प्रतीक्षा की गई। वह अँधेरे में आता मालूम हुआ और उसने कुत्ते पर पूरी शक्ति से झपट्टा मारा। कुत्ते ने आतंक और चोट से काँय काँय की और पेशाब पाखाना भी कर दिया। पर प्रबंध अटूट था। झपट्टा मारने से कुत्ता नहीं हिल सका हाँ धक्के के प्रभाव से बाघ की टाँगे ऊपर उठ गईं और कलामुंडी खाकर वह अँधेरे में छिप गया। दुबारा फिर थोड़ी देर बाद उसने अँधेरे में से ही झपट्टा मारा। अंत में उसने लालटेन की ओर से आक्रमण करने की नई योजना बनाई और अर्धप्रकाश में जैसे ही वह बैठा कि फायर हो गया और घायल होकर पास की झाड़ी में जाकर मर गया।

बाघ चट्टानी गुफाओं, झाड़ियों, सघन पेड़ों की डालियों में छिपकर आराम करता है इसलिए शेर की भाँति इसका हाँका सुनिश्चित नहीं होता। हाँके से बघेरे मारे जाते हैं पर कभी कभी बाघ हाँकेवालों की आवाज से आगे न बढ़ कर पीछे की ओर लौटता है और हाँकेवालों में किसी को घायल करके या मार करके उनकी पंक्ति को तोड़ता हुआ भाग जाता है। दूसरी बड़ी कठिनाई यह भी है कि बाघ शेर की भाँति पानी के निकटवाली झाड़ियों में ही सदा नहीं रहता। कभी कभी तो यह भी हो जाता है कि वह बड़े वृक्षों की डालियों में छिपा बैठा रहता है और

हांके वाले आगे निकल जाते हैं। नौसिखुवे शिकारियों को वह खाना भी दे देता है क्योंकि अपनी मार पर आते समय वह नीचे ही नहीं पेड़ों के ऊपर शाखों पर भी दबकर चलता है। चंद मचान पर बैठने के बाद शिकारी जब मचान छोड़ कर चला जाता है तब बाद अपनी मार को आकर खा जाता है।

बाघ बिजड़े में भी पकड़े जाते हैं। लोहे की सलाखों के बिंजड़े में कुत्ता बांध दिया जाता है और दरवाजा खुला रहता है। जैसे ही बिंजड़े में बाघ पूरा घुस जाता है वैसे ही बाघ के वजन से ऊपर का तख्ता नीचे गिर पड़ता है और दरवाजा बंद हो जाता है। विभिन्न इलाकों में विभिन्न प्रकार के बिंजड़े बनाये जाते हैं। शेर बिंजड़े से बड़ा कतराता है पर कभी कभी वह भी फंस जाता है ~~और बिंजड़ा~~ पर शेर का बिंजड़ा लगभग १५ फुट लम्बा और ५ फुट ऊंचा बनता है। बिंजड़े में पहिये लगा दिए जाते हैं और सुविधानुसार ~~बांध~~ बांध को उचित स्थान पर पहुंचा दिया जाता है।

बाघिन एक समय में दो से चार तक बच्चे ~~देती है और~~ प्रायः ~~बच्चे देने का समय~~ फरवरी और मार्च है। शेर के बच्चे अपेक्षाकृत पल सकते हैं पर बाघ के बच्चों का पाला जाना बड़ा कठिन होता है। विषाक्त घात और धोखे का उन्हें सदा खतरा रहता है। जब कभी किसी ने बाघ के बच्चे को पाला तो उसे ६-७ महीने बाद मारना ही पड़ा। घर के पालतू किसी भी जानवर को देखकर बच्चे का आक्रमण करने की प्रवृत्ति उसकी बढ़ती ही जाती है अतः उसे मारना ही पड़ता है।

बाघ की चालाकी और धूर्तता का एक प्रमाण यह भी है कि भारत में शेर की संख्या तो कम हो रही है पर बाघ के लोप होने का कोई खतरा नहीं है।

शेर की भांति बाघ भी ठीक उन्हीं कारणों से आदमखोर हो जाता है जिन कारणों से शेर हो जाता है। पर शेर की अपेक्षा बाघ अधिक चालाक और धूर्त होता है इसलिए आदमखोर बच्चे का मारना आदमखोर शेर की अपेक्षा अधिक कठिन है। जिस इलाके में आदमखोर लगता है उस इलाके में आतंक का राज्य कायम हो जाता है। एक स्थान पर मार करने के बाद वह वहां से मीलों दूर जाकर दूसरी मार करता है। आदमखोर बच्चे की चालाकी को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है और सीधे सादे गांव वाले इसलिए आदमखोर बच्चे को किसी भी प्रेतात्मा का रूप ही समझते हैं। सायंकाल के समय मां बेटी पानी भर

मकान की सीढ़ियों पर चढ़ती है। आगे-आगे मां पीछे-पीछे बेटी। आदमखोर बच्चा देख पाँव लड़की को उठा ले जाता है सिर से बर्तन गिरने की आवाज होती है तो मां लड़की की आवाज से बर्तन गिरने का राज होता है। अपना बर्तन नाराजगी में मां घूम पड़ती है और समझती है बर्तन के ऊपर से लकड़ी कहीं गिर गई है। गिरा बर्तन उठाते समय मां को जब वहां गिरा खून मिलता है तब वह चीख मारती है कि बेटी को आदमखोर बच्चा ले गया। दो आदमी मकान के बीच दीवार के सहारे बैठे बीड़ी पीते हैं और एक दूसरे को हुक्का देते जाते हैं। एक ने जैसे ही हुक्का दूसरे को थमाया और दूसरे ने अभी गुड़गुड़ी मुंह के पहले को लौटाया तो पहला वहां से गायब था। पता चलाया तो मालूम पड़ा कि जिस क्षण दूसरे की निगाह नीची हुई उसी क्षण आदमखोर बच्चा पहले को उठा ले गया। एक कमरे में एक रोगी लेटा है उसकी सेवा के लिए कई आदमी कमरे में हैं। किवाड़ आधी तक बंद हैं ताजी हवा के लिए खिड़की खुली है। रोशनी चलने फिरने योग्य नहीं है। आधी रात के लगभग कोई चीज मेज से गिरी तो खटका हुआ और देखा तो रोगी पलंग से गायब था। आदमखोर बच्चा खिड़की के मार्ग से रोगी को उठा ले गया। आदमखोर बच्चे को कभी कभी अपने शिकार की ऐसी लत पड़ जाती है कि वह अपने उसी क्षेत्र के व्यक्तियों को पकड़ता है। तीसरी रात को आए दस बीस आदमी सोये हुए हैं बीच में स्त्रियां सोई हैं। रात में आदमखोर बच्चा आया और बीच में से ही एक गढ़वाली महिला को उठा ले गया। महिला को ले जाते समय घास में बच्चे का जूता एक खाते व्यक्ति के लग गया जिससे वह जाग गया। कारण यह था कि वह बच्चा गढ़वाल में स्त्रियों को ही पकड़ा करता था और जब कई स्त्रियां मिलती थीं तो वह गढ़वाली स्त्री को ही चुनता था इसलिए उसने वहां भी ऐसा किया। मकान में आदमी सो रहे हैं, प्रातःकाल के समय कोई घायल के लिए कपड़े से निकला पर फिर लौटा नहीं। इस प्रयाग के आदमखोर बच्चे ने कई वर्षों तक इतना आतंक मचाया और कई सौ मनुष्यों को वह मार कर खा गया। बड़े बड़े नामी शिकारियों को उसने छकाया। कुमाऊं शिकार गाइड

पुस्तक चार नाथे मेजर कॉर्बेट की अत्यंत रोमांचकारी 'इस प्रयाग का आदमखोर बच्चा' ली गई है। —लेखक

जैसे विष को लाश में रखा गया और उसको वह खा गया पर उससे मरा नहीं। उत्तर प्रदेश सरकार ने उसे मारने में काफ़ी सहायता दी। मेजर कोर्बेट जैसे शिकारी को भी उसने काफ़ी छकाया और दो चार बार वे उसके द्वारा मारे जाने से बच भी गए। पर अंत में असफलता ही हाथ आते देख केवल दो दिन का प्रयत्न और करने का इरादा करके उसे छोड़ कर वे जाने ही वाले थे कि आखिर में एक पेड़ पर बैठ कर वे उसे मार सके।

आदम खोर बघेरे को ~~मारने के लिए~~ मारना पहाड़ी क्षेत्र में बड़ा कठिन है। लाश पर वह दुबारा वह बहुत कम आता है। या तो मौके से या धोखे से भले ही कोई उसे मार सके। जिस क्षेत्र में वह मार कर रहा हो उस क्षेत्र के सब लोगों को रात में मकान से बाहर नहीं निकलना चाहिए और घास लेने वालों को भी इक्का दुक्का जंगल में नहीं जाना चाहिए। पर जानवरों के चारे और खेती का ऐसा प्रश्न है जिसमें बाहर जाना ही पड़ता है।

बाघ काफ़ी अधिक चालाक होता है पर उसकी घ्राण शक्ति इतनी तीव्र नहीं होती। हाँ, बाघ की दृष्टि और श्रवणशक्ति विकट रूप से तेज होती हैं। पत्तियों और झाड़ियों में तनिक सी गति को वह अपने बैठे स्थान से ही देख लेता है। जिस आवाज को आदमी किसी भी प्रकार नहीं सुन सकता उस आवाज को बाघ बड़ी शीघ्र सुन लेता है।

काला बाघ

अनेक लोगों का खयाल है कि काला बाघ साधारण बाघ से भिन्न होता है। चिड़ियाघरों में कभी कभी काला बाघ देखने को मिलता है। पर काला बाघ किसी भिन्न प्रकार की नसल न होकर प्रकृति का एक अजूबा है, क्योंकि एक ही बाघिन कभी कभी एक ही साथ पीला बच्चा भी देती है और काला बच्चा भी देती है। काले बच्चे पर भी चकत्ते होते हैं। काले बाघ की खाल भीगे काले रेशम-सी लगती है। दक्षिण-भारत में काले बाघ अधिक पाये जाते हैं। पीले और काले बाघों के स्वभाव में भी कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि वे कोई अलग अलग तो हैं नहीं।

हिम बाघ

हिम बाघ के विषय में अभी तक पूरी जानकारी न तो शिकारियों को है और न प्राणिशास्त्र पर लिखनेवालों को है। पर वैज्ञानिकों को इसका पता एक शताब्दी से अधिक से है। भारत में यह लद्दाख, हिमांचल प्रदेश के उत्तरी भाग, टिहरी गढ़वाल और कुमाऊँ के बरफ से ढंके क्षेत्रों में ही पाया जाता है। यों तो हिम बाघ अन्य बाघों से मिलता जुलता है पर मुख्य भेद अन्य बाघों और हिम बाघ में यही है कि इसकी खोपड़ी ~~[illegible] सी घुमावदार होती है~~ झुकी हुई मेहराबदार होती है तथा उसका समूर अन्य बाघों की अपेक्षा कृत होता है और रंग में भी अंतर होता है। समूर घना और ऊन की तरह का होता है, इसका कारण यह है कि हिम-बाघ शीत प्रधान क्षेत्र का जानवर है अतः लंबा, घना, ऊन जैसा समूर भयंकर शीत में इसकी रक्षा करता है। राख-मायल पिलछाँह सफेद समूर पश्मीने जैसा कोमल होता है जो नीचे पेट पर बिल्कुल सफेद होता है और बैठने पर बरफ का एक भाग सा ही प्रतीत होता है।

हिम बाघ के चकत्ते अन्य बाघों के चकत्तों से अपेक्षाकृत लंबे होते हैं और शरीर पर किसी विशेष हिसाब से नहीं होते तथा जड़ के रंग की अपेक्षा उनका भीतरी भाग अधिक गहरे रंग का होता है। बाघों के चकत्तों के समान हिमबाघ के सिर, टाँगों और पूँछ के निचले भागों के गुल बीच में हलके पीले रंग के नहीं होते।

हिमबाघ को बरफ से ढंके क्षेत्रों में रहने के कारण 'बर्फीले क्षेत्र का बाघ' भी कहते हैं। जिस क्षेत्र में हिमबाघ रहता है वहाँ पेड़ कम होते हैं, संभवतः उस क्षेत्र में इसे पेड़ पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती इसलिए यह अनुमान लगाया जाता है कि वह पेड़ पर चढ़ने का अभ्यस्त नहीं है। अभी तक हिमबाघ को प्राकृतिक अवस्था में अध्ययन नहीं किया गया इसीलिए यह अनुमान लगाया गया है पर सिद्धांत रूप से पेड़ पर चढ़ने में इसे कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। स्वयं लेखक का हिमबाघ का अध्ययन टिहरी (गढ़वाल) में पिंजड़े में पले एक हिमबाघ का है। कई वर्षों तक गरम जगह में रहने से उसका समूर गिर गया था और स्वभाव में साधारण बाघ जैसा ही हो गया था। किसी भी आदमी का पिंजड़े के पास पहुँच जाना उसके लिए बड़ी परेशानी की बात थी, तथापि पिंजड़े में वह बहुत दुःखी था।

कुछ लोगों का मत है कि हिमबाघ भारत से लोप होने की सीमा पर पहुँच गया है। कारण यह है कि उसका

खाल अपेक्षाकृत बड़ी सुन्दर और कीमती होती है। भारत में उसकी संख्या भी कम है। अभी तक वह लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के उत्तरी भाग में तो पाया जाता है और गढ़वाल तथा कुमाऊं से भी लाप नहीं हो गया है। पर इसको सुरक्षा की आवश्यकता है और बिना सरकारी संरक्षण के वह बच नहीं सकता क्योंकि ~~तिब्बत में इसकी खाल~~ गढ़वाल, कुमाऊं और लद्दाख से लगे तिब्बती भाग में इसकी मुख्य खुराक भेड़ और बारहसिंघा हो रहा है और इसकी खाल का लालच भी इतना अधिक है कि भारतीय भूभाग में भी बचे खुचे हिमबाघों को खता है।

शीत काल में यह हिमाच्छादित पर्वत शिखरों पर १८-१९ हजार फुट की ऊंचाई तक उतर आता है पर ग्रीष्म काल आते ही १६-१७ हजार की ऊंचाई पर रहने चला जाता है। यह जंगली भेड़, बकरे, खरगोश और चूहे आदि का शिकार करता है। बर्फीली चट्टानों में जब यह घुसबाघ बैठ जाता है तो अपने रंग के कारण शिकार को भांसा दिये रहता है तथापि उसे दिखाई नहीं पड़ता। जानवर भेड़ों का तो यह बुरी तरह शिकार करता है और शीत प्रधान इलाकों में भेड़ों पर सामान लादकर ले जानेवालों के साथ अगर भोटिये कुत्ते न हों तो शायद भेड़ों का यातायात ही बंद हो जाय। ये शिकारी भोटिये कुत्ते जिनकी गर्दनों में टीन के कांटेदार कालर पड़े रहते हैं और गर्दन से पिछाड़ी तक एक टीन की पत्तर बंधी रहती है हिमबाघ के भेड़ों पर आक्रमण करने पर उसके ऊपर टूट पड़ते हैं और मार डालते हैं। इस प्रकार सुसज्जित भोटिये कुत्ते तो अपने बाघ को भी मार लेते हैं। हिमबाघ आदमी पर आक्रमण नहीं करता और आदमखोर होने का अभी तक उसका कोई समाचार भी नहीं है। जहां वह रहता है वहां एक तो आदमी होते ही कहां हैं फिर प्राकृतिक अवस्था में इसको पर्याप्त भोजन मिल जाता है। वैसे खूंखारी में यह हिमबाघ अन्य बाघों से कम नहीं है।

हिमबाघ के विषय में पूरी जानकारी नहीं है पर मिस्टर लैनफोर्ड ने जिस हिमबाघ के विषय में लिखा है उसकी लम्बाई ७ फुट ४ इंच थी जिसमें से ३ फुट की तो पूंछ ही थी। हिमबाघ की ऊंचाई लगभग दो फुट होती है और पूंछ सुन्दर लंबे बालों से सुशोभित जड़ के पास मोटाई में थोड़ी कम होती चली जाती है।

वृक्ष बाघ

वृक्षबाघ को अँग्रेजी में 'ट्री ओडेड लैपर्ड' कहते हैं और लम्बे चित्तों के कारण वह लम्बचित्ता भी कहलाता है। भारत में तो यह केवल सिक्किम भूटान और असम में पाया जाता है। यह अपना अधिकतर समय पेड़ों पर ही बिताता है जहाँ से वह छोटे छोटे जानवर पकड़ कर खाता रहता है। पक्षी, चूहे, खरगोश आदि इसकी खुराक है। पेड़ों पर रहने के कारण ही इसे वृक्ष बाघ कहते हैं।

~~साधारण बाघ की लम्बाई दुम से मुंह तक होती है~~
~~सिंह बाघ की लम्बाई दुम से मुंह तक होती है~~ पर वृक्ष बाघ सब बाघों में छोटा होता है और इसकी लम्बाई दुम से साढ़े ४ फुट तक ही होती है। वृक्ष बाघ की पूँछ लगभग ३ फुट तक लंबी होती है अर्थात् कुल लम्बाई का आधा भाग पूँछ में ही होता है जिस पर घना समूर होता है। वृक्षबाघ की ऊँचाई केवल एक या सवा फुट होती है।

चकत्ते तो वृक्ष बाघ के बड़े सुंदर होते हैं और ~~शेर तथा साधारण बाघ का मुकाबला के कर सकते हैं~~। उसके शरीर के चकत्ते सिलमार (साबेल कैट) से मिलते हैं। इस जानवर का रंग बिलकुल भूरा सा होता है जिसके ऊपर बड़े बड़े काले चित्ते होते हैं। ये चकत्ते साधारण बाघ के चकत्तों के विकसित रूप से प्रतीत होते हैं। ~~वृ~~ चकत्ते सबसे अधिक लम्बे कंधों और दोनों बगलों की ओर होते हैं ~~और वृक्ष बाघ के~~ पीछे की ओर जो इनका आकार छोटा होता जाता है। सिर तथा टांगों पर ये चित्ते पास पास मिले से होते हैं। पीठ के बीच में ये चित्ते लंबे लंबे पूँछ की ओर जाते प्रतीत होते हैं। गालों पर दो गहरी काली धारियाँ होती हैं। पूँछ पर ये चित्ते दूर दूर छल्ले से होते हैं। गले के नीचे काली धारी स्पष्ट चमकती है। वृक्ष बाघ के शरीर पर ये चित्ते इतने सुन्दर प्रतीत होते हैं मानों पीली जमीन पर काले बादल उड़ रहे हों।

वृक्ष बाघ का बदन बड़ा गठीला और सुडौल होता है तथा आकार बड़ा नहीं होता।

श्री ई. एच. पीगॉक ने अपने रचे हुए अपनी पुस्तक 'एनिमल्स ~~ऑफ~~ बर्मा और पड़ौस मेरिआ' (एनिमल्स ऑफ बर्मा एण्ड एडजोइनिंग टैरीटरीज) में लिखा है "मैंने एक शादी के बारे में सुना जो जंगली सुअरों के लिए डेरा करके लौटा था और उसने साथियों को बताया कि वह दो बड़ी ही सुन्दर बहुत बड़ी बिल्लियाँ मार कर लाया

है। उन बिल्लियों को उसने १२ नम्बर बंदूक से मारा है। पर वे दो बिल्लियाँ वृक्ष बाघों का एक छोटा सा जोड़ा था। सन् १९३३ में ही डब्लू. स्ट्रेचन ने 'मौल्ड बाइ ए टाइगर' में एक वर्णन में लिखा है कि पेड़ के एक छिपे स्थान में से किस प्रकार उन्होंने एक मादा वृक्ष बाघ को मारा और उसके एकमात्र कुछ दिनों के बच्चे को लाकर पाला। बच्चा एक महीने तक अच्छी तरह पला और जब वे छुट्टी चले गए तो संभवतः देखरेख की कमी से वह मर गया। १९३३ में ही स्ट्रेचन ने लिखा है कि वृक्ष बाघ बहुत ही कम कहीं कहीं ही मिलता था। स्ट्रेचन ने लिखा है कि जब पेड़ के खोखले से वृक्ष बाघिन निकली तब उन्हें इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं रहा कि वह काफ़ी खूंखार हो सकती है।

यद्यपि वृक्ष बाघ छोटा होता है पर क्रोधित किए जाने पर बहुत खूंखार हो जाता है। वह बड़ा ही सक्रिय और तेज जानवर है चुपचाप बैठे रहना उसे बिल्कुल पसंद नहीं है।

वृक्ष बाघ बड़ी आसानी से पाला जा सकता है क्योंकि चिड़ियाघरों में यह बड़ी आसानी से अपने खिलाने वाले के साथ बाहर निकल कर फोटो खिंचा लेता है। पर प्राकृतिक दशा में वृक्ष बाघ का अध्ययन कठिन है अतः इसके विषय में शिकारियों और लेखकों को अतिविस्तार से अधिक कुछ नहीं मालूम है। जंगलों के कट जाने से वृक्ष बाघ भी अब लोप ही होता जा रहा है क्योंकि इसका विशेष प्रिय स्थान बड़े पेड़ों की दुफंकी और तिफंकी शाखाओं के बीच का है जहां वह दिन में भी रहता है और रात को भी रहता है। वह बड़े पेड़ों के खोखल में बच्चे रखता है।

बिल्लियाँ

हमारे देश में कई प्रकार की जंगली बिल्लियाँ होती हैं पर इस पुस्तक में केवल उन ही बिल्लियों का वर्णन किया जायगा जिनके विषय में यथेष्ठ वैज्ञानिक जानकारी है।

मछुआ बिल्ली

इसको मछुआ बिल्ली (फिशिंग कैट) इसलिए कहते हैं क्योंकि यह अपनी गुजर बसर प्रायः मछली, घोंघे और कछुए पकड़कर करती है। मछुआ बिल्ली घर की पालतू बिल्ली से कुछ बड़ी होती है। इस बिल्ली के साधारण आकार के नर की लम्बाई नाक के सिरे के पूंछ के अंतिम सिरे तक ४१½ इंच होती है जिसमें से पूंछ ही अकेली ११½ इंच की होती है। इतने लंबे बिलौटे की कंधों पर ऊंचाई १५ इंच होती है। इसके बदन का रंग सिलेटी होता है और गालों का रंग सफेद, जिस पर काली धारियां होती हैं। शरीर पर चित्ते होते हैं जिनमें बीच के रंग हलका नहीं होता। चित्ते चौड़े कम, अधिक होते हैं। पूंछ का सिरा काला होता है। मछुआ बिल्ली की खोपड़ी अन्य चीर फाड़ कर खानेवाले मांसाहारी जानवरों से कम मिलती है और बन्दर से अधिक मिलती है। यह ठीक है कि भारत की कुछ अन्य छोटी बिल्लियों की खोपड़ियां भी मछुआ बिल्ली से मिलती जुलती हैं। भारतीय पालतू बिल्लियों - घर की बिल्लियों के आंख के खांचों (socket) के चारों ओर मछुआ बिल्ली की तरह हड्डी का वृत्त पूरा होता है।

ब्लैनफोर्ड के मत से मछुआ बिल्ली भारत में हर जगह नहीं पाई जाती। मलाबार तट को छोड़ कर दक्षिण भारत में तो यह है ही नहीं। हिमालय की तराई में नीचे नैपाल तक और बंगाल से लेकर पंजाब तक उत्तरी भारत में पाई जाती है। बंगाल में इसे माछबिड़ाल कहते हैं। यह बिल्ली दलदलों, झील और नदियों का किनारा रहने के लिए पसंद करती है जहां उसे पर्याप्त भोजन मिल जाता है। इसकी खुराक केवल मछली, कछुआ और केंकड़ा ही नहीं है वरन जो भी छोटा जीव इसके दांव पर चढ़ जाता है उसे ही चट कर जाती है। मछुआ बिल्ली कभी कभी सांप तक खा जाती है।

स्वभाव से मछुआ बिल्ली क्रूर और खूंखार होती है और बंगाल की छोटी गायों के नए छोटे बच्चों को जंगल में से पकड़ ले जाती है जिसके लिए बाघ जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। कभी कभी मछुआ बिल्ली भेड़ों के बाड़े में घुस कर मेमनों का भी खूब संहार कर देती है। मछुआ बिल्ली के खूंखार होने की एक घटना के विषय में ब्लिथ ने लिखा है कि एक बार एक मछुआ बिल्ले को एक ऐसे पिंजड़े में रखा गया जिसके एक भाग में बिल्ला था और

दूसरे भाग में एक पालतू बाघिन। पिंजड़े में दोनों भागों का विभाजन पतला और कमजोर था। पालतू बाघिन बिल्कुल नई कम उमर की तो थी पर आकार में मछुआ बिल्ली से दूनी थी। मछुआ बिल्ली ने पिंजड़े के विभाजन को ही नहीं तोड़ दिया वरन पालतू बाघिन को जान से मार दिया, हाँ उसका मांस नहीं खाया। मछुआ बिल्ली खूंखारी और जंगलीपन के लिए कुख्यात है और भेड़, बकरी, गायों के बच्चे ही नहीं वरन अकेला पाकर आदमी के छोटे बच्चों को भी वह चुरा ले जाती है। एक स्थल पर स्टर्नडेल ने लिखा है, "मैंने मछुआ बिल्ली को फंदे से पकड़ा और जब उसको छोड़ा और उस पर कई तरह के कुत्ते छोड़े तो मछुआ बिल्ली ने कुत्तों से भयंकर लड़ाई की। कुछ वर्षों की बात है कि मछुआ बिल्ली मेरे मुर्गीघर में घुस गई और जैसे ही मैंने मुर्गीघर को खोला तो वह बड़ी जोर से मुझ पर दूसरी ओर से अपने बैठे स्थान से झपटी।"

मछुआ बिल्ली की मादा दो से चार तक बच्चे देती है।

सिकमार बिल्ली

सिकमार बिल्ली को अंग्रेजी में 'मार्बल्ड कैट' कहते हैं। आकार में यह सुन्दर बिल्ली घर की बिल्ली से कुछ बड़ी होती है और वृक्ष बाघ से इतनी अधिक मिलती जुलती प्रतीत होती कि एकाएक देखने पर लोग इसको वृक्ष बाघ का बच्चा समझ बैठते हैं। ब्लैनफोर्ड के अनुसार इस बिल्ली के सिर और धड़ की लंबाई १८½ से २३ इंच तक होती है तथा सवा फुट लंबी झबरी पूंछ अलग होती है। यह घरेलू बिल्ली की अपेक्षा अधिक मजबूत और ताकतवर तथा फुर्तीली होती है।

सिकमार बिल्ली का रंग गंदा लल छौंह होता है जिसमें भूरे रंग की मिलावट होती है। सारे शरीर पर काले काले धब्बे होते हैं जो लहर लहर से मालूम पड़ते हैं। गरदन और सिर पर की पतली पतली धारियाँ पूंछ तक चली जाती हैं। पिछली टांगों के नीचे काली चित्तियाँ होती हैं और पूंछ पर काली गड़ारियाँ सी पड़ी रहती हैं। पेट का रंग पिलछौंह सफेद होता है। सिकमार का समूर विशेष रूप से घना और कोमल होता है तथा हिमालय में रहने वाली सिकमार के पेट पर तो ऊन जैसा समूर पाया जाता है।

भारत में सिकमार पूर्वी हिमालय और असम में पाई जाती है अर्थात वृक्ष बाघ का क्षेत्र ही इस

बिल्ली का भी क्षेत्र है। स्वभाव से सिकमार लजीला जानवर है और खतरे को समीप आया समझ छिपकर भागने का प्रयत्न करता है पर क्रोधित किए जोर पर खूंखारी दिखाता है। मादा सिकमार अन्य बिल्लियों की भाँति ही दो से चार तक बच्चे देती है।

सुनहरी बिल्ली

सुनहरी बिल्ली (गोल्डन कैट) भारत की प्रसिद्ध बिल्ली है जो दक्षिणी पूर्वी हिमालय में मिलती है। वहाँ से उत्तर की ओर तिब्बत तक पाई जाती है। वैसे पूर्व की ओर मलाया और बरमा तक पाई जाती है पर वास्तविकता तो यह है इस बिल्ली का ठीक ठीक यह पता नहीं कि कहाँ तक इसका निवास क्षेत्र है। सुनहरी बिल्ली वृक्ष बाघ से छोटी होती है और बादामी रंग के कारण बहुत जल्दी पहचानने में आ जाती है। इसका यह सुनहरापन लिए बादामी रंग पीठ की लाइन में कत्थई सा हो जाता है। ठोड़ी और शरीर के नीचे का भाग तथा पूंछ का नीचे का भाग या तो बिल्कुल सफेद होता है या सफेदी मायल होता है। इसकी छाती पर कुछ काले चित्ते पड़े रहते हैं और चेहरे पर ऐसे चिह्न होते हैं जो बदलते रहते हैं।

सुनहरी बिल्ली के स्वभाव का भी कुछ पता नहीं है पर इसके रंग से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रेतीले और चहानी इलाकों का जानवर है।

बाघ बिल्ली

बाघ बिल्ली जिसे अंग्रेजी में 'लैपर्ड कैट' कहते हैं घर की छोटी पालतू बिल्ली के आकार की होती है। पर इसकी टाँगे अपेक्षाकृत लंबी होती हैं। वैज्ञानिकों ने इसको लगभग १५ वैज्ञानिक नाम दिए हैं और उसके रंग भी भिन्न भिन्न होते हैं। पर है यह बाघ बिल्ली ही।

साधारण प्रकाश में इसकी पुतली का आकार गोलाकार होता है और पूंछ की लम्बाई भी एक सी नहीं होती। पूंछ का नाप बिल्ली के सिर से पूंछ की जड़ तक के नाप से एक तिहाई या आधे से कुछ कम होता है। बाघ बिल्ली की लम्बाई २४ से २६ इंच तक होती है और पूंछ ११-१२ इंच लंबी होती है। बाघ बिल्ली के चित्तों का स्पष्ट वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि विभिन्न बिल्लियों में विभिन्न प्रकार के चित्ते होते हैं तथापि अपने चित्तों के कारण इसे चित्तेदार बिल्ली ही कहना चाहिए। बाघ बिल्ली के बदन को ऊपरी भाग की खाल का रंग पीला और भूरा कलछौंह होता है जिस पर काली, आड़ी, गाढ़ी लम्बापन लिए चित्तियाँ होती हैं। गरदन पर काली धारियाँ

तथा इंक और पैरों पर काली चित्तियां होती हैं। माथे पर चार खड़ी लकीरें ~~रहती~~ होती हैं जो बहुत कुछ स्पष्ट रूप से पीठ की ओर चली जाती हैं।

बाघ बिल्ली शुद्ध रूप से जंगली जीव है और भारत के विभिन्न भागों में पाई जाती है। भारत में यह हिमालय के पार्श्व भाग में शिमले तक, बंगाल के अधिकांश ~~भाग~~ भाग में, पश्चिमी घाट में बम्बई की तरफ, ~~मद्रास के~~ वाइनाड और ट्रावनकोर के जिलों में, पूर्वी हिमालय में और असम में पाई जाती है।

~~इस बिल्ली का सम्पूर्ण वर्णन बड़ा कठिन काम है क्योंकि यह जीव अत्यधिक, चुनाव जीवी, वर्ण का ~~अनेक~~ विभिन्नताओं को लिये पड़ी है और इसके अनेक प्रकार हैं।~~ यद्यपि यह जंगली इलाकों का जानवर है पर केवल पहाड़ी जंगल ही इसके निवास स्थान नहीं हैं क्योंकि बंगाल के सुन्दरबन जैसे समुद्र के किनारे के स्थान में भी यह पाई जाती है। बाघ बिल्ली की गुजर बसर छोटे स्तनधारी जीवों और जंगली चिड़ियों से होती है। वसंत में बाघ बिल्ली बच्चे देती है जो संख्या में 3-4 होते हैं।

बाघ बिल्ली आकार की तो छोटी होती है पर होती बड़ी खूंखार है। जब इसको पिंजड़े में रखा जाता है तो दिन में यह एक कोने में गठरी सी बनी पड़ी रहती है और बिल्ली की जाति के पशुओं के समान बेचैनी से इधर उधर चक्कर नहीं काटती। ~~लिथ~~ साहब जंगली जानवरों के पालने में विशेष दक्ष थे पर उन्होंने भी स्पष्ट लिख दिया है कि वे बाघ बिल्ली को पालने में असफल रहे। ~~ब~~ ब्रैनफोर्ड साहब का कथन है कि लंदन के चिड़ियाघर में एक बाघबिल्ली पल गई थी और देखभाल करनेवाले को पहचान कर आ जाती थी। गुस्सैल भी बाघबिल्ली कम नहीं होती। सन् 1923 में टिहरी गढ़वाल के जताप नगर नामक स्थान से डेढ़ मील की दूरी से लेबर्स के पास आई कि कुछ गुफा में बाघिन के बच्चे हैं। लेबर ने जाकर गुफा के मुंह पर आग जलाई, धुंआं किया पर बच्चे नहीं निकले। सायंकाल को बाघिन तो नहीं आई पर बाघ बिल्ली वहां आई। आग और धुंआं खतम हो चुकने पर गुफा के पास उसने 'म्याऊं' 'म्याऊं' शब्द किया, तो गुफा से दो तीन बच्चे निकले। लेबर ने आड़ से निकल कर पत्थर मार कर बाघबिल्ली को भगाने की चेष्टा की। पर भागने के बजाय वह गुर्रा कर इतनी तेजी से झपटी कि अगर बंदूक उसके पेट में न अड़ जाती और कौरन ही फायर न हो जाता, तो वह लेबर की गर्दन से चिपट जाती। बच्चों को लेबर उठा लाया

यह केवल कई दिनों तक ही उन्हें जिन्दा रख सका।

चितकबरी बिल्ली

अंग्रेजी में इसे 'रस्टी स्पौटेड कैट' कहते हैं। भारत वर्ष में शेर और बाघ जहाँ बड़े पशु हैं वहाँ उसी जाति के सबसे छोटे जानवर भी होते हैं। चितकबरी बिल्ली इसी तरह की एक छोटी सी बिल्ली होती है जो आकार में घरेलू बिल्ली से भी छोटी होती है। भारत में यह भारत के दक्षिणी भाग में ही पाई जाती है और कभी कभी मध्यप्रदेश तक में भी मिल जाती है। मलाबार तट में कहीं नहीं होती है। 'भारत के स्तनपोषी जीव' नामक पुस्तक में जौर्डन ने लिखा है: "यह बिल्ली रुक्ष तालाबों की सूखी घास, खुले मैदानों के नालों और छोटी झाड़ियों में पाई जाती है। इस बिल्ली का एक बहुत छोटा बच्चा १८४६ में मेरे पास लाया गया जो बिल्कुल पालतू हो गया। यह बच्चा बड़ा ही सक्रिय और खिलाड़ी था। जब वह आठ माह था तब मैंने उसे उस कमरे में रखा जिसमें चिकारा हिरन का एक छोटा बच्चा था। जैसे ही इसने चिकारे के बच्चे को देखा तो तुरंत ही तड़प कर उसकी गरदन पर चिपट गया और बड़ी ही कठिनाई से छुड़ाया गया। इस घटना के कुछ दिनों बाद मैंने उसे खो दिया। वह प्रायः गिलहरियों की शिकार की तलाश में जाया करता था।" पर ब्लैनफोर्ड का कहना है कि चितकबरी बिल्ली गाँवों इत्यादि के निकट नालों और घासों में ही नहीं जंगलों में भी पाई जाती है।

चितकबरी बिल्ली की पीठ भी खाल का रंग सुर्खी मायल भूरा होता है और निचला भाग सफेद होता चला जाता है। इसके शरीर तथा टाँगों पर चित्ते होते हैं पर पूँछ पर नहीं होते। किन्हीं किन्हीं बिल्लियों में लालपन अपेक्षाकृत अधिक होता है। एक ही बाल कई रंग का होता है। पीठ और बगल के चित्ते चौड़े कम होते हैं लम्बे अधिक होते हैं और प्रायः आड़ी रेखाओं में होते हैं। चितकबरी बिल्ली के माथे पर भारत की अन्य छोटी बिल्लियों के समान चार [illegible] होती हैं। आँखों के पीछे भी चेहरे पर एक एक धारी होती है।

चित्तीदार बिल्लियों में यह विचित्र होती है क्योंकि इसकी पूँछ पर न छल्ले से बने होते हैं न चित्ते होते हैं और नीचे का भाग अपेक्षाकृत पीला होता है। चितकबरी बिल्ली की लम्बाई नाक से लगाकर पूँछ की जड़ तक १६ से १० इंच तक होती है और पूँछ ९½ इंच लंबी होती है। अपनी खुराक और बच्चे देने में

यह अन्य बिल्लियों के समान ही है और अपनी गुजर बसर रेत, पत्थरों तथा अन्य छोटे स्तनपोषी ~~प्राणियों~~ जीवों से करती है ~~और रात्रिचर है~~। ~~२-४ बच्चे एक समय में देती है।~~

रेगिस्तानी बिल्ली

रेगिस्तानी बिल्ली (इंडियन डेज़र्ट कैट) भी ~~बहुत~~ छोटी होती है और यह भारत के शुष्कभूमि प्रदेश में पायी जाती है। ~~पश्चिमी~~ राजस्थान और पंजाब में हरियाणा क्षेत्र में ~~पाई जाती है~~ एक महत्त्वपूर्ण है। आकार में यह चेल बिल्ली के समान ही होती है पर इसके सिर के स्थान में चमकते ही होते हैं। मोटी धारी पंक्तियों में पैर मालूम पड़ते हैं। इसकी पूंछ भी गाउचुस ~~काली~~ होती है ~~और~~ जो पतली होती चली जाती है तथा सारे शरीर की लम्बाई की आधी होती है।

रेगिस्तानी बिल्ली का रंग मिलाई लिए हुए बालू का सा होता है तथा शरीर के चित्ते छोटे और गोल होते हैं। ~~सिर~~ सिर तथा गर्दन के चित्ते तो बहुत छोटे छोटे होते हैं जो पास पास की पंक्तियों से प्रतीत होते हैं। टांगों के अगली भागों पर लंबी धारियां होती हैं और पूंछ की जड़ के ऊपरी भाग में लंबी धारियां सी होती हैं। ~~इसकी~~ पूंछ के सिरे पर छल्ले से होते हैं तथा दो कोला होता है।

~~छोटे बिल्ली और रेगिस्तानी बिल्ली का~~

~~आकार होता है।~~

वन बिल्ली

वन बिल्ली या जंगली बिल्ली या वनबिलाव (जंगल कैट) साधारण घरेलू बिल्ली से बड़ी, भारी और भयानक होती है। घरेलू बिल्ली के समान ही इसके कान के छोरों पर दो काले लंबे बाल होते हैं। इसकी पूंछ अपेक्षाकृत ~~कम~~ छोटी होती है और उसकी लम्बाई बिल्ली के सिर तथा शरीर की लम्बाई से एक तिहाई से लगाकर कुछ कम होती है।

इसका रंग बिलकुल सिलेटी से लगाकर मिलाई लिए हुए भूरा होता है। पीठ ~~पर~~ का रंग गहरा होता है और नीचे के भाग सफेद होते हैं जिसमें हलका पीलापन सा प्रतीत होता है। पीठ पर से दोनों बगल घुमैली खड़ी धारियां पड़ी रहती हैं जो कहीं कहीं टूट कर चित्तियों की सी मालूम पड़ती हैं। उम्र पाकर ये चित्तियां घुमैली और अस्पष्ट हो जाती हैं। वनबिल्ली के शरीर का निचला भाग सफेद होता है। ~~इसकी~~ छाती पर भी किसी किसी बिल्ली के एक काली धारी पड़ी होती है

और कभी कभी किसी किसी बनबिल्ली के पेट पर भी हलके रंग की चित्तियां होती हैं। बनबिल्ली के पैर के तलवे लालपन लिए होते हैं और पूंछ के नीचे के भाग में छल्ले होते हैं तथा पूंछ का सिरा अन्य सब बिल्लियों के समान ही काला होता है। बनबिल्ली की लम्बाई ~~पालतू बिल्लियों के समान ही~~ ३३ इंच से ३९ इंच तक होती है और छोटे आकार की बिल्ली की पूंछ लगभग ११ इंच तक होती है।

बनबिल्ली सारे भारत ~~भर~~ में ~~फैली हुई~~ पाई जाती है और कन्याकुमारी से लगाकर हिमालय की ७-८ हजार फुट की ऊंचाई तक पाई जाती है। भारत में तो कभी कभी काले रंग वाली बनबिल्ली भी ~~पाई जाती~~ मिलती है। यह खुले स्थानों तथा जंगलों में समान रूप से ही रहती है पर इसे विशेष रूप से लंबी घास और नरकल की झाड़ियों पसंद हैं, पर वह गन्ने के खेत तथा अन्य फसलों में भी आ जाती है।

स्वभाव से बनबिल्ली भयानक और खूंखार होती है। यह है तो बन की बिल्ली पर गांवों में चोरी की खातिर आ धमकती है तथा मुरगियों, भेड़ के बच्चों आदि को उठा ले जाती है और इस प्रकार बड़ा नुकसान पहुंचाती है। अपने खूंखार स्वभाव के कारण इसे पाला भी नहीं जा सकता। बनबिल्ली की ढिठाई भी प्रसिद्ध है यहां तक कि शिकारियों द्वारा मारे गए शिकार तक को सामने से भगाते भगाते उठा ले जाती है। पालतू पक्षी और छोटे जीवों को इससे बचाना बड़ा मुश्किल होता है। लेखक के फार्म के २० एकड़ के क्षेत्र में बबूलों का जंगल है जिसमें दस बारह बनबिल्लियां रहती हैं। दो चार बार ऐसा हुआ कि जंगल में जैसे ही खरगोश को छोटी बंदूक से मारा कि बनबिल्ली उसे ले ~~उड़ी~~ भागी। फार्म के झोंपड़े में दूध इत्यादि ~~[illegible]~~ खाने के लिए तो वे बहुत परेशान करती हैं। केवल ट्रेन्ड कुत्ते ही इससे पीछा छुड़वा सकते हैं अन्यथा कुत्तों से भी वह खूब लड़ती है। केवल बुल टैरियर कुत्तों का जोड़ा अगर बनबिल्ली को पकड़ पाये तब ही वह मारी जाती है।

वह दिन भर किसी छिपे स्थान में पड़े रहने के बाद रात होते ही अपने शिकार पर चल देती है। इसकी मादा साल में दो बार ३-४ बच्चे देती है।

स्याहगोश

स्याह का अर्थ है काला और गोश का अर्थ है कान। इसलिए स्याहगोश का अर्थ हुआ काले कानवाला जानवर। वैज्ञानिकों में स्याहगोश के वर्गीकरण के विषय में बड़ा मतभेद रहा है। स्याहगोश के अनेक भेद हैं पर यहाँ पर भारत में पाये जानेवाले स्याहगोश की चर्चा ही करनी है। बिल्ली की शकल सूरत का इठे से कानवाला जानवर बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। स्याहगोश के अनेक भेद हैं जिनमें यूरोपीय स्याहगोश प्रमुख है। हमारे देश में यह पंजाब, मध्यप्रदेश के जंगल और मलाबार तट को छोड़कर दक्षिण के सभी जंगलों में पाया जाता है। तिब्बती स्याहगोश लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, टिहरी गढ़वाल और कुमाऊं के उत्तरी भाग में पाया जाता है। सन् १९२३ में लेखक ने एक स्याहगोश टिहरी गढ़वाल की भैरों घाटी और तिब्बत की सीमा के बीच मारा था। हमारे देश के इतने बड़े भूभाग में पाये जाने पर भी स्याहगोश संख्या में इतने कम हैं कि बहुत कम मिलते हैं। इनके रहने का स्थान भी ऐसे सघन जंगलों में होता है जहाँ आदमी का पहुँचना आसान नहीं होता। पर भारत में अपेक्षाकृत मध्य भारत के जंगलों में स्याहगोश अधिक मिलते हैं।

स्याहगोश की लम्बाई ढाई फुट और ऊंचाई डेढ़ फुट होती है तथा पूंछ एक फुट से कम छोटी सी होती है। पूंछ का सिरा काला तथा चमड़ा बढ़िया होता है। स्याहगोश का रंग हल्का भूरा या बादामी होता है। पेट का रंग धिलधौंह होता है पर किसी किसी के पेट बिल्कुल सफेद होते हैं। पेट पर हल्की ललधौंह चित्तियाँ होती हैं जो लिपी प्रती सी जान पड़ती हैं।

इसके कान बाहर भूरे होते हैं और उनपर काला हाशिया बना होता है तथा नोक पर बाल होते हैं। गले पर बड़े बड़े बाल लटकते हैं जिससे स्याहगोश का सौंदर्य बढ़ जाता है।

स्याहगोश का मुख्य भोजन, पक्षी और छोटे छोटे जानवर हैं। चिड़ियाँ पकड़ने में तो यह विशेषरूप से दक्ष होता है। पेड़ों पर तो स्याहगोश चिड़ियों का

शिकार करती ही हैं पर जमीन पर भी बड़ी आसानी से चिड़ियों को पकड़ लेती हैं क्योंकि जमीन पर ५-६ फुट तक कूद यह उन्हें लपक लेता है। कभी कभी लोग स्याहगोश को उसकी फुर्ती के गुण के कारण लोमड़ी खरगोश, मोर तीतर और कबूतर के शिकार के लिए भी पाल लेते हैं।

स्याहगोश की मादा एक बार में ३-४ बच्चे तक दे देती है। इनका घना कोमल समूर बड़ा सुन्दर होता है।

चीता

चीते को अँग्रेजी में 'हंटिंग लैपर्ड' या 'चीता' कहते हैं। यह बाघ से भिन्न होता है। बाघ, शेर और सिंह से चीता ~~भिन्नता के~~ ~~दो मूल कारण हैं~~ कि अन्य बड़ी और छोटी बिल्लियों के समान चीते के नाखून पैर की गद्दी के अन्दर पूरे नहीं छिपते वरन आधे बाहर निकले रहते हैं। चीते के दांत भी अन्य बिल्लियों के दांतों से कुछ भिन्न होते हैं। ~~पहले~~ ऊपर की पहली तीन दूध की डाढ़ें (pre molar) काफ़ी छोटे होती हैं। ऊपर की मांस डाढ़ भी अन्य बिल्लियों की डाढ़ों से भिन्न होती है। चीते की खोपड़ी बहुत कुछ हिमबाघ से मिलती है ~~और~~ पर चेहरा अपेक्षाकृत छोटा होता है।

चीते के शरीर का रंग कभी कभी ललछौंह बादामी और कभी कभी भूरापन लिए पिलछौंह होता है जो नीचे के भाग में पीला होता जाता है। ~~चीते~~ चीते का सारा शरीर बड़ी बड़ी काली चित्तियों से भरा होता है, बस गले और ठोड़ी पर ये चित्तियां नहीं होती। ये चित्तियां बाघ की चित्तियों के समान छल्लेदार न होकर बड़ी बिन्दियाँ जैसी होती है, तथापि इनका कोई क्रमबद्ध सिलसिला भी नहीं होता, बस यों ही भरी होती हैं। चीते के मुंह पर आंख के सामने के कोने से ऊपरी होंठ तक काली धारी होती है और कभी कभी आंख के बाहरी भाग से एक धारी कान तक चली जाती है। पूंछ पर चित्तियां अधूरे छल्ले जैसी हो जाती हैं और पूंछ का सिरा सफेद होता है। चीते के कान जड़ में कलछौंह और बाहर काले ~~तथा~~ होते हैं। बस यों समझना चाहिए कि ताज़ी कुत्ते को बघेरे का सा जामा पहना दिया गया हो।

पर चीते के छोटे बच्चों का समूर लम्बा होता है - विशेष कर पीठ का - तथा एकसार भूरा सा होता है जिसमें चित्तियों के ~~कोई~~ चिह्न दिखाई नहीं पड़ते। पर यदि बच्चों के समूर को काट दिया जाय तो नीचे के समूर में स्पष्ट रूप से चित्तियों के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

चीते की लम्बाई नाक से पूंछ तक ७ फुट होती है जिसमें से अकेली पूंछ ढाई फुट लम्बी होती है। इसकी ऊंचाई ढाई से पौने तीन फुट तक होती है। टांगे अपेक्षाकृत इसकी ऊँची होती है। यह अफ्रीका, स्याम, ईराक, ईरान, बलूचिस्तान और भारत में पाया जाता है। भारत में भी वह बंगाल, मलाबार तट और गंगा के उत्तर में नहीं पाया जाता। चीता के रहने का प्राकृतिक स्थान न तो घने जंगल हैं और न ऊँची घास। वह तो झाड़ियों के इलाके का ही पशु है। बड़ी दुःख की बात है

कि झाड़ियों के कटने और चीते के शिकार के कारण सन् १९५२ के बाद वह जंगली हालत में नहीं पाया जा रहा है। उसको जंगली हालत में देखने के काफ़ी प्रयास हुए पर वह सन् १९५२ के बाद मिला ही नहीं। अभी वह पालतू हालत में तो मिलता है और आवश्यकता इस बात की है कि चीते के लिए राजस्थान और मध्य भारत में स्थान सुरक्षित कर दिए जायें। मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ रही हैं, अतः झाड़ियां तो कट ही रही हैं साथ ही नासमझ शिकारियों की संख्या भी काफ़ी बढ़ रही है। इनको मनुष्य की खाति भी संरक्षण मिलना चाहिए क्योंकि खेतों को नुकसान पहुंचाने वाले जानवरों का यह संतुलन बनाए रखता है और बाघ और शेर की भांति आदमखोर भी नहीं होता।

अपनी प्राकृतिक दशा में यह काले हिरन और नीलगाय तक का शिकार खेलता है। झाड़ियों तथा अन्य आड़ के सहारे पेट के बल लुकछिप कर यह जाता है और जब शिकार केवल १५०-२०० गज रह जाता है तब बिजली की गति से आक्रमण करता है और काले हिरन जैसे तेज दौड़नेवाले जानवर को भी ४०० गज में ही पकड़ लेता है। ३००-४०० गज की दूरी के लिए इससे अधिक तेज दौड़नेवाला कोई जानवर नहीं है। काला हिरन बहुत तेज दौड़नेवाला होता है और सब इलाके में कोई घुड़सवार या ताजी कुत्ता उसको नहीं पकड़ सकता पर चीता काले हिरन को पकड़ लेता है। कारण यह है कि चीता, बाघ, सिंह और शेर पहली ही छलांग में बिजली से चलनेवाली रेल के समान अपनी पूरी गति पर आ जाते हैं जबकि हिरन आदि जानवरों को तेजी पकड़ने में कुछ समय लगता है। चीते के विषय में काफ़ी जानकारी इसलिए है कि भारतीय और विशेषकर राजे महाराजे शिकार की खाति इसे पालते थे हैं। बड़े मजे की बात यह है कि चीते के छोटे बच्चे लाकर पाले जायं तो वे शिकार का काम नहीं कर पाते इसलिए बयस्क चीतों को ही लाकर पाला जाता है।

चीते जोड़ों में या अपने कुटुम्ब के छोटे से झुंड के साथ शिकार खेलते हैं। अच्छी तरह पेट भरने के बाद अपनी मांदों में आराम करने चले जाते हैं। मांद में कई दिनों तक पड़े रहते हैं। वहां से निकलकर पेड़ों पर चढ़ कर अन्य चीतों के साथ किसी नए शिकार की टोह में बैठ जाते हैं। बस इन्हीं पेड़ों को लोग घेर लेते हैं और कच्ची खाल के फंदों में फांस कर पकड़ लेते हैं।

भारत के राजे महाराजे काले हिरन के शिकार की खातिर चीता पालते थे। जिस पिंजड़े में चीता रखा जाता है

उसी पिंजड़े को बैलगाड़ी के आकार का बनाया जाता है। जिसे दो बैल खींचते हैं। जब शिकार दिखाई पड़ता है तब चीते को पिंजड़े से निकाल लिया जाता है और पिंजड़े की छत पर रखवाले के साथ बिठा दिया जाता है। बाज़ की आँखें ढकने की जैसी बद्धी होती है वैसी ही बद्धी चीते की आँखों पर चढ़ी रहती है। चीता कूल्हे के बल कुत्ते की तरह बैठ जाता है और चीते का मालिक उसके गले में अपनी बाँह डाले रहता है। चीता इस स्थिति में आँखों से बद्धी हटाये जाने की प्रतीक्षा में बैठा होता है क्योंकि जब वह पिंजड़े से बाहर निकाला जाता है तब ही समझ जाता है कि शिकार देखा जा चुका है। जब हिरन १५०-२०० गज़ की दूरी पर होते हैं और आती गाड़ी को देख इधर उधर दुल की चाल से चलते हैं तथा काला हिरन स्पष्ट दिखाई पड़ता है तब चीते की बद्धी खोल कर उसे हिरन दिखा दिया जाता है। चीता तुरंत गाड़ी से कूदता है और विद्युत गति से हिरन को पकड़ लेता है। यदि दूरी अधिक होती है तो आगे झाड़ियों में छपक कर तब आक्रमण करता है। हिरन की गरदन दाब कर तब तक चीता प्रतीक्षा करता है जब तक उसका मालिक आकर फिर उसकी चमकती आँखों पर बद्धी नहीं चढ़ा देता। पर चीता हिरन की गरदन में गड़े अपने दाँत नहीं निकालता। हिरन की गरदन के चारों ओर कड़ी रस्सी बाँधी जाती है और गरदन काटी जाती है जब खून भरभरा कर निकलने लगता है तो एक बड़ा हैंडिल वाला कटोरा खून से भर लिया जाता है। चीते की आँखों से फिर नकाब हटा लिया जाता है, तब खून से भरे पात्र को देख चीता हिरन की गरदन से दाँत हटा कर लप लप करके खून पीने लगता है। खून पीकर जब वह शांत होता है तब फिर उसकी आँखों पर नकाब चढ़ा दिया जाता है तथा पिंजड़े में बंद कर दिया जाता और उस दिन कोई दूसरा शिकार उससे नहीं खिलवाया जाता।

पालतू चीते इतने हिल जाते हैं कि दर्शकों के पास आने पर अपने शरीर को उनसे रगड़ कर प्यार से घुर्र घुर्र करते हैं। हिरनों के झुंड में से चीता प्रायः बड़े से बड़े हिरन को ही पकड़ता है और यदि पहली ही दौड़ में वह उस हिरन को नहीं पकड़ पाता तो फिर दूसरे के पीछे नहीं जाता अतः चीता फिर बन्द कर दिया जाता है। पर जंगली चीता तो अब भारत में पाया ही नहीं जाता और बदलती दुनिया में पालतू चीतों का रिवाज भी खतम सा ही है। अब न हिरनों के झुंड हैं न झाड़ियाँ हैं, न पालनेवाले हैं। यदि चीते को जब बहुत तलाश करने पर भी चीता जंगली हालत में नहीं मिल रहा तो जहाँ भी पालतू मिले वहाँ से लेकर सुरक्षित स्थान में उन्हें पहुँचा देना चाहिए।

भालू वंश

भालू-समूह के सब वंशों के जीवों के पैरों में पांच पांच नाखून होते हैं। ~~भालू समूह को तीन वंशों में विभाजित किया गया है :~~

~~१ भालू वंश (Family Ursidae)~~
~~२ रैकून वंश (Family Procyonidae)~~
~~३ ऐक्स वंश~~

भालू वंश के सब जीव मांस भक्षी होते हैं और साथ ही फल, फूल तथा शहद भी बड़े मजे से खाते हैं। इस वंश में सब प्रकार के भालू हैं। भालू वंश के जीवों का शरीर भारी और बड़ा, पैर तगड़े नख बड़े और मजबूत तथा आंखें छोटी होती हैं। भालू वंश के जीवों के पद-चिह्न मनुष्य के पदचिह्नों से मिलते हैं क्योंकि इनके तलवे पर बाल नहीं होते और ये जीव पूरा तलवा जमीन पर रख कर चलते हैं। इनकी चाल भौंडी होती है क्योंकि भालू वंश के जीव ऊंटों की तरह अपने एक ओर के दोनों पैर एक साथ उठा कर चलते हैं। कान भी इस वंश के जीवों के छोटे होते हैं और श्रवण-शक्ति भी कम होती है। पूंछ छोटी होती है।

अन्य मांसाहारी - चीर फाड़ कर खाने वाले जीवों की अपेक्षा भालू वंश के दांत भिन्न होते हैं। उनके दांत कुत्तों की जबड़ों की तरह दो जोड़ा डाढ़ें और समूचा रखते हैं और नीचे के जबड़े में भी कुत्तों की तरह ही तीन जोड़े डाढ़ों के होते हैं। पर दांतों का आकार भिन्न होता है। इन दोनों जबड़ों में मांस दांत भी मांसाहारी जीवों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। दोनों जबड़ों में पहली तीन दूध की डाढ़ें बहुत छोटी होती हैं और जब भालू वयस्क हो जाता है तब वे गिर जाती हैं। भालू वंश के कपाल दांत इस बात के द्योतक हैं कि वह अन्य मांसाहारियों से भिन्न है इसलिए इस वंश के जीव मांस की अपेक्षा घास पात जड़ और कीड़े मकोड़ों पर अधिक अवलंबित रहते हैं। विकास क्रम में भालुओं के दांत अधिक विकसित जीवों के समान हैं। पूंछ का न होना भी इसी प्रकार अधिक विकसित जीवन का द्योतक है।

भालू वंश के जीव इस प्रकार एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हैं और उनमें जो कुछ भी भेद है वह नगण्य है। योरप एशिया और उत्तरी अमेरिका में भालू एक विशाल क्षेत्र में फैले हुए हैं। नीचे कुछ भालुओं का वर्णन है।

भालू

भारतीय रुक्ष भालू को छोड़ कर इस जाति में सब प्रकार के भालू सम्मिलित हैं और उनके ४२ दांत होते हैं। जिनमें कृंतक दंत $\frac{3}{3}$, कीले $\frac{1}{1}$, दूध की डाढ़े $\frac{4}{4}$, डाढ़े $\frac{2}{3}$ होती हैं। भीतर की दूध की डाढ़े वयस्क होने पर गिर जाती हैं। पैरों के तलुवे बिना बालों के होते हैं, नाखून मझोले और मुड़े होते हैं। कान छोटे खड़े और बालों से घनीभूत होते हैं। ~~अब नीचे भारतीय भालुओं का वर्णन दिया जाता है।~~ ध्रुवी भालू जिसे उत्तर का शेर कहते हैं, उत्तरी अमेरिका का कोडियक भालू, उत्तरी अमेरिका का भयंकर खूंखार ग्रिजले भालू तथा ~~भारतीय भालुओं को छोड़~~ अन्य भालू इस पुस्तक का विषय नहीं है इसलिए यहाँ केवल भारतीय भालुओं का ही वर्णन दिया जाता है। हमारे देश में केवल तीन प्रकार के भालू होते हैं:— (१) भूरा भालू (२) हिमालय का काला भालू (३) रुक्ष भालू। अंग्रेजी में क्रमशः तीनों के नाम हैं - 'ब्राउन बेयर' 'हिमालयन ब्लैक बेयर' और 'स्लोथ बेयर'।

भारत ~~हमारे देश~~ में भालुओं के विषय में बड़ा भ्रम है। पहला तो यह, कि भालू पेड़ पर उल्टा चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है। यह बात बिल्कुल ग़लत है। भालू सीधा ऊपर को मुंह किए ही पेड़ पर चढ़ता है और उतरता भी वैसे ही है, पर तने पर आकर नीचे की ओर मुंह करके, नीचे सरक पड़ता है। दूसरा भ्रम है कि वे शाकाहारी ही होते हैं और मांस नहीं खाते, पर बात ऐसी भी नहीं है। यह ठीक है कि हिमालय का काला भालू और रुक्ष भालू मांस खाने की खातिर पशु नहीं मारते, पर यदि उन्हें किसी पशु का शव पड़ा मिल जाय तो वे उसे बड़े चाव से खाते हैं। एक-दो बार इस पुस्तक के लेखक को ऐसा अवसर देखने को मिला। गाय की लाश पर बाघ की प्रतीक्षा करते समय उसने भालू को लाश पर आते देखा। भालू आकर बुरी तरह गाय को खाने चिपट पड़ा। एक दूसरी बार जब भालू बाघ की मारी गाय खा रहा था तब बाघ आ गया और दोनों में खूब लड़ाई हुई। अन्त में दोनों ही मारे गए। ~~श्रीमद् शिकारी जिम कौर्बेट ने लिखा है कि एक बार जब वे एक भैंसे की लाश पर शेर के लिए बैठे थे, तब शेर के आने के बाद ही एक विशालकाय हिमालयन काला भालू आया और ऊपर से ही शेर को देखकर खड्ड में कूद कर~~

उसने शेर को भगा दिया। इतना ही नहीं, वरन वह मालू शेर के भागने पर उसके पीछे भी भागा।

भूरा भालू

भूरा भालू भारत के हिमवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है। कश्मीर से लगाकर हिमांचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊं के क्षेत्र इसके निवास स्थान हैं, पर कश्मीर में अब यह बहुत कम हो गया है।

भूरे भालू का रंग पीलेपन की झलक लिए होता है पर मौसम के अनुसार इसके रंग में परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी इसका रंग कत्थई भी होता है और इस कारण लोग इसे 'लाल भालू' की संज्ञा दे देते हैं। 'लाल भालू' कभी कभी मदारियों के पास देखने को मिल जाता है। साधारणतया भूरे भालू की लम्बाई नाक से पूंछ के सिरे तक साढ़े पांच फुट होती है पर कभी कभी साढ़े सात फुट तक लम्बे भालू भी पाये गए हैं। बड़े भालू की ऊंचाई सवा तीन फुट होती है और छोटी सी पूंछ केवल तीन चार इंच लंबी ही होती है। अन्य सब भालुओं की भांति भूरे भालू की छाती पर अंग्रेजी के 'वी' (V) अक्षर का सा चिह्न बना होता है और अगर खड़े भालू पर निशाना लेने का मौका हो तो शिकारी इसी पर निशाना लेते हैं। इसका भूरा रंग इसलिए होता है क्योंकि हिमालय में वह खुले वातावरण में रहता है। हिमालय का भूरा भालू भोजपत्र के पेड़ों में पाया जाता है शायद इसलिए भी उसका रंग हल्का होता है ताकि वहां के वातावरण में उसका रंग तालमेल खा जाय। साथ ही जहां भूरा भालू रहता है वहां जमीन पर बरफ भी अपेक्षाकृत अधिक दिनों तक रहती है।

भूरा भालू शीत निद्रा में सोता है और ग्रीष्म काल के आगमन पर जब वह शीत निद्रा से जगता है तब वह वजन में हलका हो जाता है। उस समय वह भूखा भी होता है क्योंकि शीत निद्रा के महीनों में उसकी चर्बी ही भोजन का काम देती है। गरमी से दुबारा शीत निद्रा में जाने के पूर्व वह खूब मोटा हो जाता है और खाल भी गहरे रंग की हो जाती है उन्हीं दिनों शिकारी उसका शिकार खेलते हैं।

भूरा भालू प्रायः अकेला ही रहना पसंद करता है और मादा के साथ बच्चे देखे जाते हैं। वह भोजपत्र के

पेड़ों के जंगल में और देवदार के जंगलों में मिलता है। गर्मी के दिनों में हिमालय की अधिक ऊँचाई पर बर्फ़ वाली चट्टानों और मैदानों पर चला जाता है। हिमालय के भूरे भालू की शीत निद्रा अक्टूबर और मई तक चलती है, पर इस निद्रा से उसका जागरण बर्फ़ के गलने की अवधि के अनुसार विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होता है। शीत निद्रा के अंतिम दिनों में ही मादा भालू के शीत ही बच्चे देती है और जब बाहर निकलती है तो बच्चे उसके साथ होते हैं। मादा के दो बच्चे होते हैं जिनके बदन पर बाल नहीं होते और आँखें बंद होती हैं। लगभग छः मास तक उनकी यही दशा रहती है।

भूरा भालू जड़, साग पात और कीड़े मकोड़े खाता है और इसे काई लाश भिल जाती है तब उसे भी बड़े शौक से खाता है। पहाड़ी बाग बगीचों को वह बहुत नुकसान पहुँचाता है क्योंकि जंगली फल और घास ही नहीं खाता बल्कि सब और की खेती भी खा जाता है। कीड़े मकोड़ों की तलाश में वह पत्थर उलटा पलटा करता है। लेखक ने सन् १९२३ के जुलाई मास में जंगली और गोमुख के बीच भुजवासे में एक चट्टान के किनारे एक बड़े भालू को पत्थर पलटते देखा था।

उस भालू का इन पेड़ों और चट्टानों से ऐसा मिलता हुआ रंग था कि भालू को वे लगभग २५-३० गज पास पहुँच गये लेकिन को पता न चला। भालू को सुनाई कम देता है परन्तु वह अच्छा सूंघ लेता है। यूथन उतरवा (लाल रंग) की जोंक और तड़वड़ाता हुआ चट्टानों की भी भालू खाता है।

रीछ भालू की भाँति यह भालू भी आसानी से पाला जा सकता है और मदारी उसे नचाकर रोजी कमाते हैं।

हिमालय का काला भालू

हिमालय का काला भालू

बिल्कुल नितांत रूप से पेड़ों वन का रहने वाला जानवर है। इस का नितांत काला होता है और छाती पर उल्टा हुआ V आकार का सफेद चिह्न होता है। लद्दाख में तो यह होता नहीं है पर कश्मीर हिमांचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमाऊं, सिक्किम, भूटान और असम तक पाया जाता है। काले भालू के नाखून रीछ भालू की अपेक्षा

छोटे होते हैं। इसका समूर भी छोटा और चिकना होता है। मे गलियों में और भी बेगाने हो जाते हैं। समूर के नीचे छोटा खुरदरा समूर नहीं होता। जाड़ों में कंधों के बाल बढ़ कर केले से होजाते हैं। मानों इसके कुदरती कान अपेक्षाकृत बड़े और उन पर बाल होते हैं। छाती पर के सफेद चिह्न कभी कभी पूरी छाती पर भी सफेद होती है और अक्सर होठ सफेदी मायल होता है। नाक भी लालपी मायल भूरी होती है।

कश्मीर गढ़वाल और कुमाऊं के काले भालू की लंबाई नाक से पूंछ तक सोढ़े पांच फुट से साढ़े छः फुट तक होती है। काले भालू का वजन डेढ़ मन से तीन मन तक होता है। मादा नर के दांत बड़े होते हैं। यह वजन बहुत बढ़ जाता है उन दिनों इन पर कई इंच चर्बी चढ़ जाती है। घूमने फिरने में भी फुर्तीला होता है। चर्बी के नीचे मांसपेशियां होती हैं।

गर्मियों में काला भालू हिमालय की तलहटी से १० से १२ हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है। बांज के जंगलों में काला भालू बहुत होता है वहां वह रात में किसानों की फसल खाने के लिए निकल पड़ता है और किसानों को बहुत नुकसान पहुंचाता है। मक्का, मडुआ और जौ की खेती को वह उजाड़ देता है। सेब और खुमानी के बागों का तो वह बड़ा दुश्मन है। उससे बड़ी रखवाली करनी पड़ती है। शहद तोड़ने में भी वह बड़ा प्रवीण होता है। शहद खाने का भी वह बड़ा शौकीन होता है — एक हाथ से मक्खियां उड़ा कर छत्ते को तोड़ मुंह में रख लेता है। सिसौर को तोड़ कर उसमें अपना मुंह देकर उल्टी सांस खींच कर वह दीमक को अपने मुंह में खींच कर खा जाता है। वह चींटी भी खूब खाता है। शिकारियों को कभी-कभी वह इस क्रिया में मग्न मिल जाता है। यद्यपि काला भालू फल फूल खाने वाला जानवर है फिर भी किसी को मिल जाने पर टूट पड़ता है। यदि बाघ की भी लाश मिल गई तो फिर वह बाघ के हटाने पर भी नहीं हटता मरे शेर पर भी वह चढ़ जाता है पर शेर उसे मार देता है। प्रसिद्ध शिकारी कैरे ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि बड़े भालू ने एक बार जब वे एक भैंसे की लाश पर शेर के लिए बैठे थे तब शेर के आने के बाद एक विशालकाय हिमालय का काला भालू, जो ऊपर ही से शेर को देख कर झपट में इस कर उसने शेर को भगा दिया। इतना ही नहीं,

वरन्, वह शेर के भागने पर उसके पीछे भी भागा।

काला भालू स्वभावी नहीं होता वह कई की सेब्स में भी मिलता है तथापि कई एक साथ मिलकर बागों का उजाड़ करते हैं। पेड़ पर चिपने में भी वह बड़ी चालाकी दिखाता है। कभी कभी सेब के पेड़ के नीचे शिकारी या रखवाला चक्कर लगाता रहता है और भालू ऊपर पेड़ पर छिपा रहता है, ज्यों ही पाते ही भाग खड़ा होता है। खेतों में जड़ें खोदते हुए अथवा चीते हुए काले भालू मिल जाते हैं। ऐसे कभी कभी तो बड़ी विचित्र घटनायें घट जाती हैं। ऐसे सहित भालू का शिकार उतना सरल नहीं होता क्योंकि उनके निकट बड़ी सावधानी से पहुँचा जा सकता है।

काला भालू बड़ा लड़ाका होता है और जंगल के एकान्त ही कदाचित घनघोर में वह आक्रमण का देता है। पिछले पैरों पर खड़ा होकर मुंह के ले भाग गिराते हुए वह आक्रमण करता है। पहाड़ों पर कूदते फांदते दिखाई पड़ें तो वे अधिकतर भालू काले ही पाये जाते गए होते हैं। काले भालू की दृष्टि भी तेज नहीं होती घ्राण शक्ति उनकी बड़ी तीव्र होती है। भालू के शिकार और उसके खाने के लिए अच्छी ओर से उसी तरफ जाना चाहिए क्योंकि भालू नीचे भागने में गुड़ी मुड़ी होकर अपने को गड्ढा सा बना कर गड्ढे में गिर जाता है। एक दिन लेखक सायंकाल से कुछ पूर्व कोड़िया (टिहरी गढ़वाल) के जंगल के किनारे एक ढलवां चट्टान पर इसलिए कि कहीं कोई भालू दिखाई दे जाय थोड़ी ही देर में एक सा जाता प्रतीत हुआ, वहां रहते जो नीचे से 'ओ ओ' एक बड़ा भालू निकल पड़ा। एक बार गलियों के करते हैं काफल फल खाने को पेड़ पर लेखक चढ़ा, तो ऊपर भालू भी फल खाता दिखाई पड़ा। खैर थी कि राइफल साथ थी। 'ओ ओ' करके उसने इशारा किया, पर गोली उसके मुंह में पड़ी।

काले भालू मिलकर अपनी खुराक की तलाश में जाते हैं चार चार पांच पांच, कभी कभी एक साथ। जंगल का हांका किया जाय तो कभी कभी साथ मुंड एक साथ निकलते हैं पहले पर एक जेब्रि में निकलता है। पहले नर फिर साथ उसके पीछे उम्र के हिसाब से बड़े छोटे बच्चे। पेड़ों में काले भालू पेड़ों पर लकड़ी और पत्तों की एक

...घोंसले ही बना लेते हैं। गुफाओं ...ये बड़े भालुओं से भी
...ब बच लेता है। इनको शीतनिद्रा तो नहीं पर शीतनिष्क्रियता
...पाती है ...ये जाड़ों में ...आश्रय लेते हैं
...पता किसी ...पेड़ पर ...पने रात्रि आश्रय के ...हुए
...पते दिखाई देते हैं।

गढ़वाल में उसके पित्ते की बड़ी मांग होती है ...ब भालू मारा जाता है तो उसके पित्ते को निकाल कर उसमें तांबा या सोना डाल देते हैं। लोगों का विश्वास है कि तांबा या सोना पित्त में गल जाता है ...पित्त सूखने पर वह त्रिमोत्रिया की बढ़िया दवा बन जाता है। पित्त में तांबा डालते तो लेखक ने देखा है पर वह त्रिमोत्रिया की भी दवा है या नहीं यह लेखक को पता नहीं।

घायल होने पर भालू बड़ा शोर (गुल) करता है ...र कभी कभी तो चाव में कूदा कूदा कर उसे खेल बढ़ा लेता है। मादा भालू बसंत में दो बच्चे देती है। बच्चे मां के साथ कई वर्षों तक रहते हैं ...ब छोटी उम्र में मां की पीठ पर लदे भी चलते हैं।

रुक्ष भालू

रुक्ष भालू भालू के स्तनपोषी जीवों में एक ...द्वितीय जीव है ...र ...न्य भालुओं की ...पेक्षा इसमें कुछ विशेषताएं ...ई हैं क्योंकि इसके ...पनी जबड़े में कृंतक दांतों के दो जोड़े होते हैं इसलिए रुक्ष भालू के कुल दांतों की सं. ...ा ४० होती है ...बकि ...न्य सब भालुओं के ४२ दांत होते हैं। साथ ही कपोलों के दांतों का ...रमा खोपड़ी के हिसाब से ...पेक्षाकृत कम होता है। खोपड़ी में तालुआ चपटे के स्थान में झुका हुआ होता है। रुक्ष भालू के नाखून काफी बड़े ...र मजबूत होते हैं। धूथन ...र नीचे का ओंठ काफी लम्बे ...र गतिशील होते हैं।

हिमालय में काले भालू की ...पेक्षा रात भालू छोटा, हल्का ...र भोंदू होता है। इसका समूर बहुत कड़ा होता है ...र कंधों पर ...पेक्षाकृत बहुत बड़ा हो जाता है। धूथन का ...ंतिम सिरा, तो रुक्ष भालू का गंदा भूरा सा होता है, बाकी भी सफेद निशान होता है ...र लंबे लंबे नाखून भी सफेद होते हैं पर शरीर का ...न्य सब भाग बिलकुल काले रंग का होता है इसमें ...माप के जो नमूने दिए गए हैं उनसे ...नुसार सिर ...र बदन की लंबाई ~~रुक्ष भालू~~ ४½ फुट से ५ फुट) ...ंच तक होती है ...र पूंछ की लम्बाई ...सत: ४ इंच से ५ इंच

तक होती है। कंधों पर इसकी ऊँचाई २ फुट २ इंच से लगाकर २ फुट ६ इंच तक होती है। बड़े आकार के नरों का वजन लगभग साढ़े तीन मन होता है। वैसे ४ मन वजन तक के नर का भी लेखा पाया जाता है।

रुक्ष भालू भारत में हिमालय की तलहटी से कन्याकुमारी तक और बंगाल से कच्छ तक पाया जाता है। पर बंगाल और दक्षिण भारत में अब इसकी संख्या नहीं के बराबर है। रुक्ष भालू एकाकी भी पाया जाता है पर इसको तीन की संख्या में भी देखा गया है। तीन की संख्या में जब यह होती है तब मादा के साथ दो बच्चे होते हैं। कभी कभी तो ४-५ की टोली में भी वह पाया जाता है। रुक्ष भालू सघन जंगलों, वनों, पथरीली गुफाओं में रहता है और मानसून के दिनों में तो चहानी गुफायें ही उसे पसंद है। वर्षा ऋतु को छोड़ कर वह नालों से सटी गुफाओं और घास में रहता है। भोजन की तलाश में यह रात में घूमता है और जैसे स्थानों में जहां आबादी नहीं होती वहां प्रातःकाल आठ बजे तक और मध्याह्न के बाद सूर्यास्त से एक दो घंटे पहले भी घूमता मिल जाता है। वर्षा ऋतु में तो कभी कभी दिन भर बाहर ही घूमा करता है। रुक्ष भालू अन्य भारतीय जीवों के समान दोपहर की धूप से बचता है पर जैसा कि लंबे काले बालों से प्रतीत होता है वैसा वह नहीं है और शेर की अपेक्षा धूप से कम घबराता है। लैनफोर्ड ने मई की एक दोपहरी में ३-४ भालुओं को चहान पर धूप में सोते देखा था। रुक्ष भालू को शीत निष्क्रियता भी नहीं होती। अपनी पिछली छोटी टांगों लंबी थूथन और निकले हुए निचले होठ के कारण यह एक विचित्र ही जानवर प्रतीत होता है। साधारण तौर पर इसकी गति धीमी चाल है मानो टहल रहा हो पर आतंकित होने पर एक भद्दे भोंडे ढंग से भागता है मानों गोल गोल कूदता जाता हो। चहानों पर भी वह बहुत अच्छी तरह चढ़ता है। पेड़ों पर भी रुक्ष भालू चढ़ जाता है पर धीरे धीरे। इसकी छोटी डाढ़ों से स्पष्ट है कि इसके भोजन में फल, फूल, जड़ें, कीड़े मकोड़े और शहद विशेष रूप से हैं। फरवरी से मार्च तक महुआ के सुंदर फूल रात में झड़ते हैं और जंगल के अन्य जीवों के समान रुक्ष भालू भी इन फूलों को बड़े शौक से खाता है। गुबरीले, शहद और छोटी शहद भी मक्खियां, तथा दीमक तो रुक्ष भालू को प्रिय हैं। किसी दिमौर को पाकर वह उसकी ऊपरी

हिस्से को तोड़ता है और दीमक के छत्ते तक पहुंच जाता है। दिनों में कभी कभी आधा धुआं जाता है और सिपाही कभी की इस स्थिति में उसे दबोच लेते हैं। छत्ते के छेद में फिर मुंह लगा कर वह इतनी जोर से सांस खींचता है कि दो सौ गज तक वह आवाज सुनाई पड़ती है। इस प्रकार काफी गहराई तक के दीमक और अंडी बच्चे मुंह में खिंच आते हैं। गर्मियों के दिनों में रुक्ष भालू को चट्टानों के नीचे घुर्र घुर्र करता सुनाई पड़ता है।

गादुर (उड़न लोमड़ी) और ताड़-बिल्ली के समान ये भी ताड़ के पेड़ों में बने छत्तों में से छेद कर रस रुक्ष भालू ताड़ी खूब पी लेते हैं और नशे में आकर शोर मचाते हैं। रुक्ष भालू शहद का भी बड़ा शौकीन है और इसे बहुत नुकसान पहुंचाता है। असली खुराक तो इसकी तिलचिड़ा ही है पर मौका पड़ने पर मिल जाय तब यह उसे खा जाता है। रुक्ष भालू के बारे में सैंडर्सन ने लिखा है कि उन्होंने जंगल में मरे जानवरों की हड्डियों को सड़ते हुए देखा है।

अन्य भालुओं के समान रुक्ष भालू की भी श्रवण शक्ति कमजोर होती है। हवा खींचने और गुरगुराने की आवाज के अतिरिक्त आतंकित होने पर वह विचित्र आवाज करते हैं। पेड़ों के नीचे भोजन खाते समय वह आपस में लड़ता भी है। स्वभावतः रुक्ष भालू सीधा और शांत जानवर है। रुक्ष भालू की श्रवण शक्ति की तरह दृष्टि भी तेज नहीं होती और यह आंखें चींद चींद कर देखता है। पर घ्राण शक्ति इसकी बड़ी तेज होती है। इसके बच्चों को अगर कोई उठा ले जाय तो उनकी गंध पर वह मीलों चला जाता है। मादा एक समय में दो बच्चे देती है पर कभी कभी ऐसा भी होता है कि तीन बच्चे भी हो जाते हैं। मादा बच्चों को पीठ पर बिठा कर चलती है और जहां वह खाना शुरू करती है वहीं नीचे उतर पड़ते हैं और क्रीड़ा करते हैं। जब पूरे भाग पर पीठ पर चढ़ जाते हैं। जब मां की पीठ पर एक ही बच्चे के लायक जगह रह जाती है तब दूसरा बच्चा पैदल चलने लगता है।

रुक्ष भालू आपस में बड़े स्नेह से रहते हैं। परिवार का एक सदस्य जब खूब मोटा हो जाता है तो उसे एक साथी को यह सतर्क करता है कि कहीं इसी ने तो नहीं मारा। घायल अवस्था में यह खूब चीखता चिल्लाता है। कभी कभी दो घायल रुक्ष भालू आपस में लड़ने भी लगते हैं। यों तो रुक्ष भालू स्वभाव

से डरपोक होता है पर जब वह आक्रमण कर बैठता है तब नाखूनों और दांतों से भयंकर हमला करता है। खड़े होकर चोट करने के कारण आदमी के मुंह पर चोट आती है और उस चोट से कभी कभी आदमी मर भी जाता है। यात्री या शिकारी की अकस्मात भेंट ही ऐसा करवाती है। भालू को सुनाई तो कम पड़ता ही है दिखाई भी कम पड़ता है अतः आतंकित होने पर वह आक्रमण कर बैठता है। लेखक को एक शिकारी मित्र जाड़ों में विंध्य पर्वत के एक मार्ग पर जा निकला। भालू एक ऊंची कगार पर बैठा धूप ले रहा था। आशंका थी कि आगे बढ़ने पर भालू आक्रमण कर देता, पीछे हटने में भी डर था। बंदूक में मुर्गियों के लिए नम्बर चार के छर्रे भरे थे। हवा भालू की ओर से बह रही थी। शिकारी ने चुपचाप पीछे जाकर बैठ कर अपने दोनों पैरों का धक्का इतनी जोर से भालू में मारा कि 'भोभो' करता भालू नीचे सौ फीट खड्ड में गिर पड़ा और शिकारी आगे चला गया। बच्चों वाली मादा और एकाकी भालू अकारण ही आक्रमण कर बैठते हैं। कदाचित् इसका यह कारण है कि भालू में समझ कम होती है और आगन्तुक को आक्रमणकारी समझ बैठते हैं यह धारणा बिल्कुल गलत है कि रुक्ष भालू आदमी को पकड़कर अपनी छाती से दाब कर मार देता है, बात यह है कि वह अपने पिछले पैरों पर खड़े होकर आक्रमण करता है और बड़े बड़े नाखूनों के प्रहार करता है। तब भालू के एक ही तमाचे या थाप से आदमी गिर पड़ता है।

रुक्ष भालू का शिकार या तो हांके से होता है या सबसे आसान तरीके से कि उसकी गुफा का पता लगा कर सूर्योदय से पहले वहां पहुंच कर गुफा पर आते हुए भालू को मार दिया जाता है। आक्रमण करते समय भालू पहले आदमी को पकड़ लेता है तब खड़े होकर

कुकुर-वंश

(Family Canidae)

इस वंश में सब भेड़िये, सियार लोमड़ी और कुत्ता हैं। इस वंश के जीवों में से कुत्ता एक ऐसा प्राणी है जिसका संबंध मनुष्य से घनिष्ठ है। कुत्ते की स्वामिभक्ति, लोमड़ी की मक्कारी, भेड़िये की टकुंखारी और सियार का समानपन सर्वविदित हैं। इस वंश के जीवों की धूपन लंबी, नख बाहर निकले होते हैं जो बिल्ली के नखों के समान गद्दियों में नहीं छिप सकते।

चरखे और बिल्लियों से कुत्ता-वंश के जीवों के दांतों की बनावट भिन्न होती है। कुछ अपवादों को छोड़ कर इस वंश के जीवों के दांतों की संख्या ४२ होती है जिनको इस प्रकार लिख सकते हैं :—

$\frac{3}{3}$ कृंतक दांत, $\frac{1}{1}$ कीले, $\frac{4}{4}$ दूध की डाढ़े, $\frac{2}{3}$ डाढ़ें। दोनों जबड़ों के प्रत्येक ओर चार दूध की डाढ़ें होती हैं पर भारतीय जंगली कुत्ते के नीचे के जबड़े में दो जोड़े डाढ़ों के होते हैं। लोमड़ी और भेड़िये की बाह्य रचना में काफी भेद होता है पर इस बाह्य भेद के होने पर भी वे एक ही जाति के जीव हैं।

कुत्ता और बिल्ली वंश के जीवों में एक बड़ा भेद यह है कि कुत्ता-वंश के जीव टोली में मिलकर शिकार खेलते हैं। इस वंश के जीवों की घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र होती है पर साथ ही दृष्टि और श्रवण शक्ति भी बहुत अच्छी होती है। नखों की बनावट से कुत्ता-वंश पेड़ पर नहीं चढ़ सकता पर जीभ भी इस वंश के जीवों की खरेखरी न होकर मुलायम होती है। पैरों के तलवे मुलायम होते हैं।

कुत्ता वंश के जीवों की खुराक में मांस के अतिरिक्त अन्य अनेक चीजें भी हैं। इस वंश के बच्चों की आंखें जन्म के समय बंद होती हैं और वे सब नालों में या मिटों में अपने लिए जगह बना कर रहते हैं।

भेड़िया

भेड़िया कुत्ते के वंश का सबसे बड़ा जानवर है। उसकी भूख और खूंखारी विश्वविदित है। पर वह बड़े ही [illegible] है और बराबर तो वह जानता ही नहीं। भूखा प्यासा वह मीलों दौड़ता चला जाता है और तो भूख कभी उसकी बुझती ही नहीं। ~~यों तो भेड़िया उत्तरी ध्रुव से लगाकर संसार के लगभग प्रत्येक देश में पाया जाता है पर यहाँ केवल भारतीय भेड़िये का ही वर्णन देना है।~~ भारतीय भेड़िया शीत प्रधान देशों के भेड़िये से छोटा होता है पर खूंखारी में दुनिया भर के भेड़िये एक से हैं। [illegible] देश में उसकी संख्या पहले से बहुत कम भी हो गई है। स्वभाव से वह झुंड में रहनेवाला जानवर है। लेखक ने इनकी [illegible] ग्यारह की टोली देखी है। हमारे देश में भेड़िया हिमालय की तलहटी से लगाकर सम्पूर्ण भाग में पाया जाता है। केवल बंगाल के दक्षिणी भाग में कम होता है और मलाबार तट पर वह बिल्कुल नहीं पाया जाता।

भेड़िये की मादा किसी गुफा या भिटे में अक्तूबर, नवम्बर या दिसम्बर के महीने में ३ से ८ तक बच्चे देती है। भेड़िये का समूर बहुत छोटा होता है और उसमें ऊन नहीं होती। समूर का रंग बादामी झलक लिए सिलेटी होता है। जो कभी कभी पीठ पर अपेक्षाकृत अधिक काला हो जाता है। भारतीय भेड़िये का रंग अन्य देशों के भेड़िये की अपेक्षा अधिक मटमैला सिलेटी होता है। पूँछ को छोड़ कर नाक से पूँछ की जड़ तक भेड़िये की लम्बाई ३ फुट होती है। पूँछ भरी [illegible] छवरी कुत्ते जैसी होती है। सियार की सी नहीं होती। पेट मटमैला सफेद होता है। बच्चे कलछौंह भूरे होते हैं जिनकी छाती पर सफेद दाग होता है। अगर बच्चों को बहुत छोटा पकड़ लिया जाय तो वे पाले जा सकते हैं।

इसकी मांद किसी चट्टान की गुफा में या भिटा किसी नाले के किसी अकेले स्थान में मार्ग से हटकर होता है। घनी झाड़ियों में भी यह अपने रहने के लिए छिपाव का स्थान बना लेता है और अपना भिटा अपने आप खोद लेता है। बड़े पालतू कुत्ते से भेड़िये का जोड़ा मिल जाता है जिससे पैदा हुए बच्चे काफ़ी मजबूत तथा खूंखार होते हैं। अल्सेशियन कुत्तों की नसल भेड़िये से ही निकाली गई है।

भेड़िये शिकार की खातिर दिन और रात दोनों में घूमते हैं, पर रात में अधिक खूंखार हो जाते

है। हिरन, गाय के बच्चे, बकरी और भेड़ भेड़िये की खास खुराक है पर अधिक भूखे होने पर वे चूहे, मेंढक और कुछ भी खा जाते हैं तथा आपसी पर भी हमला करने से नहीं चूकते। भारतवर्ष में ८-१० भेड़िये मिलकर नीलगाय तक पर आक्रमण कर देते हैं और कनाडा में तो एक भेड़िया बड़े रेनडियर तक को मार डालते हैं। ~~चिड़ियों को भेड़िये खाने से नहीं छोड़ते।~~ भेड़िया चिड़ियों तक को खा जाता है।

भेड़िया कुत्ते की तरह भोंकता नहीं है और न गीदड़ की तरह वह आवाज करता है। कई भेड़िये मिलकर रात में 'अइ' 'अइ' की पतली आवाज करते हैं। डा० मोहम ने लिखा है कि अकेला भेड़िया भी ऐसी आवाज करता है मानो बहुत से भेड़िये बोल रहे हों। कभी कभी इसीलिए अकेला ही भेड़िये की आवाज सुन कर पेड़ पर चढ़ कर रात बिता देते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि भूखे भेड़ियों का झुंड पीछा कर रहा है। पर वास्तविकता यह होती है कि एक ही भेड़िया भी ~~अलग~~ विभिन्न आवाजें करता रहता है।

मि० इलियट ने एक स्थानीय भेड़िये के बारे में लिखा है, "मैंने कई भेड़ियों को हिरनों के एक झुंड में चारों ओर से घेरते पाया। भेड़ियों में से कई एक विभिन्न स्थानों में छिप गए। हिरनों को उनके छिपने का पता नहीं था और पहले जब हिरन छिपे हुए आक्रमणकारियों के निकट आए तो उनमें से एक को उन्होंने पकड़ लिया। एक अवसर पर तीन भेड़ियों ने चिल्लाते हिरनों का पीछा किया और नाले के पार दोनों भेड़िये छिपे बैठे थे, जैसे ही चिकारे वहां से निकले उनमें से एक मादा को उन्होंने पकड़ लिया।" स्वयं लेखक ने एक बार अपने गांव से दो मील की दूरी पर दो भेड़ियों को काले हिरन का शिकार खेलते देखा। लेखक काले हिरन की तलाश में था। दूरबीन से काला हिरन दिखाई पड़ा और साथ में दो सौ गज की दूरी पर दो भेड़ियों को हिरन की नाक लगते पाया। ~~दिखा~~ दिखा फिर सारा दृश्य देखा। एक भेड़िये ने ~~एक~~ मादा ने धूल में छोटा गड्ढा बनाकर जिसमें वह छिपकर बैठ गई। लिरबाइचा जिसका ~~ने~~ अस्पताल की भेड़ों में बिल्कुल मिल गया, तब न भेड़िया लेखक की ओर को कार कर हिरन के दूसरी ओर ~~गया~~ नाक उसकी ओर कर दी। बचाव की खातिर हिरन किसी मादा भेड़िया की तरह ही दुलकी चाल से चला और जैसे ही हिरन उसकी पहुंच में आ गया मादा भेड़िया ने एकदम कूदा और हिरन की गरदन में दांत गड़ा दिये और उसे ~~मार~~

गिरा लिया।

बात की बात में दोनों ने हिरन को फाड़ डाला और लगभग आधा मांस वे दोनों खा गए। खरगोश तथा गीदड़ को भेड़िये दौड़ा दौड़ा कर थका कर पकड़ लेते हैं।

भेड़िया थकना तो जानता ही नहीं है और न उसकी भूख ही कभी बुझती है। भूख में 20-20 मील पैदल चले जाना उसके लिए आसान काम है। सबसे दक्ष तो वह भेड़ पकड़ने में होता है। बकरी को जब भेड़िया पकड़ता है तब बकरी की सिट्टी गुम हो जाती है और वह बोल भी नहीं पाती। गड़रिये इसीलिए भेड़ बकरियों में एक गाय रखते हैं ताकि जब भेड़िया आक्रमण करे तो गाय उनकी रक्षा कर सके। फर्रुखाबाद जिले में एक ढाक के जंगल के किनारे लेखक हिरन के शिकार के लिए बैठा था। दो सौ गज पर एक गड़रिये की बकरियां, एक भैंस और एक गाय चर रहे थे। जंगल से निकल एक भेड़िये ने लपक कर भैंस के करीबवाली एक बकरी की गरदन को पकड़ लिया। भैंस ने सिर उठाया, देखा और कुछ नहीं कहा, लेकिन जैसे ही गाय की नजर भेड़िये पर पड़ी, उसने पूंछ उठाकर भेड़िये पर हमला किया और सींगों से उठाकर भेड़िये को दूर फेंक दिया। कंपकंपाता भेड़िया भाग खड़ा हुआ।

कभी कभी भेड़िया-आदमी के बच्चों को उठा ले जाता है और अपने बच्चों के साथ पालता है पर ऐसे पाले हुए बच्चे जब पकड़ लिए जाते हैं तो जानवरों जैसा व्यवहार ही करते हैं। ये बच्चे बहुत दिनों बाद कपड़ा पहनना सीखते हैं और उनका मानसिक विकास तो होता ही नहीं है।

भेड़िया जितना खूंखार होता है उतना ही चालाक, शक्की और धूर्त भी होता है। इक्के दुक्के आदमी के पीछे जब भेड़िये पड़ जाते हैं तो कभी कभी रस्सी घसीट कर चलने या छाता घसीट कर चलने से आदमी बच जाता है, क्योंकि पूरी तरह जाने बिना भेड़िये आक्रमण नहीं करता। पर ये सब बिजू के दिन में ही काम में आते हैं।

गांव में लोग बहुत ऊंचे घने कांटों का अभेद्य बाड़ा बनाते हैं पर भेड़िया कभी कांटों की बाड़ के ऊपर भी चढ़ कर बाड़े में घुस कर भेड़ों को मार जाता है। कच्ची दीवार के घेरे में अगर भेड़ें बंद होती हैं और भीतर से बाहर जाने के लिए तंग मोरी होती है तो भेड़िया पंजों से मोरी को खोदकर चौड़ी कर लेता है और भीतर घुस जाता है। भेड़िये की घ्राणशक्ति भी बड़ी प्रबल होती है इसलिए जिस खेत में होकर भेड़ निकल जाती है उसी खेत से भेड़िया गंध लेता हुआ भेड़ों के बाड़े तक आ जाता है। कुत्तों से तो भेड़िया डरता ही नहीं है, सदा उनको झांसा देकर गांव की भेड़ों और बकरियों की चोरी करता रहता है।

लेखक ने बीसियों भेड़ियों को मार कर उनका पेट चिरवा कर देखा पर किसी भी भेड़िये के पेट में उसे कभी कुछ नहीं मिला। पेट सदा खाली ही मिले। न जाने उनको कितनी भूख होती है जो कभी नहीं बुझती। हाँ दिल और हड्डियों की बनावट से उसकी सहनशक्ति और दौड़ने की ताकत का पता चलता है। पांडवों में भीम की खुराक अधिक थी भूख भी उन्हें बहुत लगती थी और पहलवान भी बड़े अच्छे थे इसलिए उन्हें वृकोदर — भेड़िये के से पेट वाला — कहते थे।

रूस में तो वहाँ की महाक्रांति तक भेड़ियों की दो-दो तीन-तीन सौ की टोलियाँ घूमती थीं और जिस गाँव पर वे आक्रमण करती थीं, उस गाँव में बंदूकें आदि काम में लाने पर भी वे समूचे गाँव को नष्ट कर देती थीं। सोवियत रूस ने हवाई जहाजों से भेड़ियों को मार कर उन्हें अब बहुत कम कर दिया है और वैसा कोई खतरा अब वहाँ नहीं है। भेड़िये की खूंखारी की अनेकों सच्ची घटनायें हैं। सबसे विचित्र बात तो यह है कि भेड़िया भेड़िये को भी खा जाता है।

एक बार शिवाजी के एक जनरल अपने तीन-चार आदमियों के साथ युद्ध क्षेत्र से लौट रहे थे। रात पड़ने पर एक नाले के किनारे वे लोग सो गए। थोड़ी देर बाद १०-१२ भेड़ियों की बोली कुछ दूर पर सुनाई पड़ी। लकड़ियाँ तो उन लोगों ने पहले ही बटोर कर रख ही ली थीं अतः भेड़ियों की बोली सुनकर उन्होंने फौरन आग जला दी। इतने ही में भेड़ियों ने आ घेरा। आदमियों ने जलती लकड़ियों का वृत्त अपने चारों ओर बनाया और आग के घेरे के बाहर भेड़िये गुर्राते और मरते लोग लकड़ियाँ तो घंटे दो घंटे ही जल सकती थीं फिर क्या होता। सौ गज की दूरी पर आम के पेड़ थे। जलती लकड़ियों के घेरे को पेड़ की ओर आदमी बढ़ाते गए और भेड़िये गुर्राते हुए घूम घूम कर दाँव लगाते रहे। इतने भेड़ियों से भुगतना आसान काम न था। बड़े परिश्रम से जलते वृत्त को पेड़ के पास तक बढ़ाया गया और बड़ी चालाकी तथा कठिनाई से रात के समय वे लोग पेड़ पर चढ़ सके। भेड़िये भी नीचे धरना देकर बैठ गए। प्रातःकाल हो गया पर भेड़िये घात लगाये बैठे ही रहे। तब जनरल ने अपने साफे का फंदा बनाया और जमीन से ८-१० फुट ऊँची शाख पर उतर कर फंदा नीचे लटकाया। एक भूखे तथा क्रोधित भेड़िये ने ज्यों ही साफे पर मुँह मारने की चेष्टा की कि गले में फंदा डाल कर जनरल ने भेड़िये को शाख से लटका कर फाँसी दे दी। जब भेड़िया मर गया तब उसे ऊपर

खींच कर शाखा पर रख लिया। इसी प्रकार फंदों में फंसा-फंसा कर शाखा पर लटका लटका कर जनरल ने बड़ी चतुराई और शक्ति से कई भेड़िये मार कर इकट्ठे कर लिये। फिर उन सबको एकदम नीचे गिरा दिया। भूखे भेड़िये उन मरे भेड़ियों को खाने में जुट गए। तब, जनरल और उनके साथी पेड़ की दूसरी ओर से आंख बचा कर उतरे और भाग गए।

गांवों के समीपवर्ती जंगलों, नालों, गुफाओं में जब भेड़िये बढ़ जाते हैं तो आदमी के छोटे बच्चों को भी उनसे बड़ा खतरा रहता है।

सियार

सियार या गीदड़ भारतवर्ष का ही नहीं वरन विश्व के सभी देशों का चिरपरिचित जानवर है। लोगों की आम धारणा है कि सियार बड़ा कायर होता है और इसीलिए लोग दब्बू तथा कमजोर व्यक्ति को आवेश में आकर गीदड़ कह देते हैं। पर वास्तविक बात यह है कि सियार बड़ा ही चालाक होता है और खामख्वाह का झगड़ा मोल न लेकर बचने का प्रयत्न करता है। पर चालाकी और समझदारी में वह किसी अन्य जानवर से कम नहीं है। लुक छिप कर सड़ी चीजों के प्राप्त करने और मांस की गंध लेने में वह अद्वितीय है। घायल जानवर का पीछा करते हुए हमने उसे देखा है। हिरन के गोली लगी उसकी आंतें बाहर निकली या हिरन को कमजोरी आई तो फिर मौसम चाहे कैसा ही हो गीदड़ हिरन पर आक्रमण करके उसे गिरा लेता है। दो चार बार लेखक ने देखा है कि बड़े घायल नर नीलगाय को चार गीदड़ों ने मिल कर गिरा लिया। भागते नीलगाय के हृदय के बजाय पेट में गोली लग गई और काफी चोट आई। दमदार नर ने दुल की गति से दौड़ना शुरू किया। दो सौ गज आगे बाग के सहारे आराम की खातिर नर नीलगाय रुका कि पास की झाड़ी से चार ~~गीदड़~~ सियार आ गए। दो उसके आगे हो गए और दो घाव की ओर हो गए। आगे वाले एक सियार ने नीलगाय के मुंह पर आक्रमण करने का झांसा दिया और नीलगाय ने जैसे ही सर आगे को किया वैसे ही बगल के एक सियार ने पेट के घाव में कस कर मुंह मारा। मांस नोच कर सियार हट गया और नीलगाय ने जैसे ही बगल की ओर को मुंह किया इतने में ही आगे वाले सियार ने ~~उसके~~ नीलगाय के कान पर मुंह मारा। तमतमा कर नीलगाय ने जब फिर आगे मुंह किया तो बगल वाले सियार ने फिर घाव पर मुंह मारा। थोड़ी देर तक ये दावपेंच चलते रहे और फिर एक सियार नीलगाय की उस बगल की ओर हो गया जिधर कोई घाव न था। खाली बगल में भी एक सियार ने मुंह मारना शुरू किया। ~~[illegible]~~ तेजी से भाग जाने का दम नीलगाय में न था। परेशानी में नीलगाय ने लातें फेंकना शुरू किया। दोनों बगलों के घाव बड़े होने लगे और पौन घंटे की इस प्रकार की लड़ाई में नीलगाय गिर गया तब सियारों ने डट कर मांस खाया। जंगल में मरणासन्न एक बैल को भी लेखक ने यारों द्वारा इसी प्रकार खाते देखा है।

सियार देशव्यापी जानवर है। मैदान जंगल सब जगह यह पाया जाता है। पहाड़ी स्थान और खुले मैदानों में तो यह रहते ही हैं देहातों के आसपास इसको देख लेना एक साधारण सी बात है। हिमालय पर ये ३-४ हजार फुट से अधिक

मिलता
ऊंचाई पर नहीं ~~होता~~। सियार की लंबाई पूंछ को छोड़ कर ढाई फुट होती है। झबरी सी पूंछ की लम्बाई अलग है। सियार का रंग भूरापन लिए लल छौंह या कत्थई सा होता है जो पीठ पर कुछ काला सा हो जाता है। इसके नीचे का भाग कुछ सफेद पन पर या हलका होता है। सिर के बाल काले और पूंछ के बाल खैरे होते हैं।

गांव के आसपास जंगलों और पठारों में सियार जोड़े में प्रायः देखे जाते हैं, रात में वे छोटी टोली में भी हो जाते हैं। ~~इसकी मादा एक बार में कुत्तों की तरह कई बच्चे देती है।~~ दिन में सियार झाड़ियां, घास तथा खेतों में छिपे रहना पसंद करते हैं पर जब मौका लग जाता है तो दिन में भी शिकार करते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते दिखाई देते हैं। दोपहर को जंगल की घनी झाड़ियों में मोर तथा अन्य चिड़ियों का शिकार करते हैं। फिर भी भोजन की तलाश सियार रात में ही अधिक करते हैं। सबसे विकट बात यह है सियार सर्वभक्षी है। मुर्दार सड़ी गली चीजें तो वह खाता ही है, चूहे, चिड़ियां, बतखें, गोह और धामिन सांप तक नहीं छोड़ता। इसके अतिरिक्त सियार किसान के लिए भी एक बवाले जान है। मक्का, खरबूजा, आम और पके कटहल भी वह नहीं छोड़ता। ईख भी वह बड़े स्वाद से खाता है। कभी कभी कड़े गन्ने को पकड़ने में जीभ फंस जाती है, तो सियार भूखों मर जाता है। जो कुछ भी हो फसल का नुकसान करने में वह कभी नहीं चूकता। जंगली बेरों पर तो सियार जान देता है इसलिए सियार के लिए कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता। नदी किनारे वह मछलियां भी पकड़ता है और अपना शिकार पकड़ने में बड़े दुस्साहस तथा चालाकी से काम लेता है। दुस्साहसी तो सियार इतना होता है कि जब कभी वह ८-१० की टोली में मक्का के खेत में घुसा हो और खेत का रखवाला उनको मारने के लिए टांड से नीचे उतरे तो कभी कभी रखवाले पर आक्रमण कर देता है।

जंगल में सियार, शेर और बाघ से दूर पीछे पीछे चलते हैं इस आशा में कि शेर या बाघ द्वारा मारे शिकार में से अवशेष भाग मिलेगा। जब किसी बड़े पशु को मार कर शेर खाने लगता है तब सियार दूर बैठ कर बड़ी शांति से प्रतीक्षा करते हैं और शेर के चले जाने पर उसकी जूठन पर दावत उड़ाते हैं। गांव के आस पास आकर सियार मुर्दार और सड़ी-गली चीजें तो खाते ही हैं- मुरगी आदि भी चुरा ले जाते हैं। झाड़ी में कहीं शहद की मक्खियों का छत्ता हो तो सियार उसे भी नहीं छोड़ता। नदी किनारे केंकड़ा पकड़ने का ढंग भी सियार का बड़ा मनोरंजक होता है। केंकड़ा नदी किनारे अपना बिल गोलाकार तनिक उठा हुआ बनाता है। केंकड़े की अगली टांगों के अगले हिस्से पकड़ने के लिए बड़े पैने होते हैं। अगर गीदड़ उसमें नाक डाले तो खतरा यह होता है कि केंकड़ा अपने टेंगरे

(mandible) से सियार को नाक न पकड़ने। बिच्छू जैसे तेज
डंक से नाक पकड़े भी जा सकती है। सियार अपनी दृढ़ को धूल को
साथ बिल के बिल पर चलाता है। दो पार बाल केंकड़े के बिल में
घुस जाते हैं केंकड़ा दूध को पकड़ता है तो गोधड़ एकदम दबोचकर
केंकड़ा बिल से निकाल लेता है और खाके जा
जाता है। लेखक ने सियार को कई बार चामिन सांप मारते देखा है
पर काली सांप मारते हुए देखने का अवसर नहीं मिला। एक बार तो
सियार ने भागती चामिन को आगे से मुंह पकड़ लिया। चामिन ने
उसकी टांगे जकड़ने की कोशिश की पर सियार ने इतना मौका
चामिन को नहीं दिया। फन कुचल दिया और बीच से खाना
शुरू किया। पीछा करके सियार गोह को भी पकड़ता है और केवल
कुछ अंश खाकर ही छोड़ देता है। नदी किनारे बालू पर सियार
कछुए और मगर के अंडों को खोजता है। यह बात ठीक नहीं
है कि सियार इन अंडों को सूंघ कर निकालता है। एक मास
के लगातार निरीक्षण और परीक्षण के बाद लेखक इस नतीजे
पर आया कि सियार इन अंडों को यों ही अपलक चक्षु ढंग
से तलाश करता है। सियार द्वारा नदी की रेतिया पर कछुओं
के अंडे तलाश करने की विधि से कछुओं के अंडे तलाश करने का
एक निश्चित ढंग ही लेखक ने निकाल लिया। सियार जहां तहां अनुमान
से खोद कर अंडे निकालता है कहीं निकल जाते हैं कहीं नहीं।
कछुआ गीली बालू में अंडे देता है और वह जगह कुछ
नीची हो जाती है। चार पांच इंच नीचे हाथ
डालने पर पोली जमीन आ जाती है और गीली गर्म बालू
में अंडे मिल जाते हैं। यदि प्राण शक्ति से सियार अंडे खोज
लिया करता तो कछुओं का तो अंत ही हो गया होता। वैसे सियार
की घ्राण शक्ति काफी तीव्र होती है और मुर्दा पशु को काफी
गहरा गाड़ने पर भी उसकी सड़ांद से सियार आ जाता है और
खोदने का प्रयत्न करता है।

सियार की ढिठाई भी प्रसिद्ध है। गांवों के अति
निकट आकर सड़ी गली चीजें देखते देखते खा जाता है। भगाते
भगाते भी खेत से छोटे बड़े मुर्गे मुर्गी को तोड़ कर ले भागता है।
वह रखवाले की निगाह चूकते ही आक्रमण करता है।

सियार के बोलने का एक खास समय होता है और
वह विशेष परिस्थितियों में भी बोलता है। शाम पड़ते ही एक सियार
की ओर अपनी पूंछ तुरही के समान ऊपर उठा कर 'हूएऽऽऽ' की
आवाज लगाता है। बस जितने भी सियार आस पास उसकी
आवाज सुनते हैं सब मुंह उठा कर जल्दी जल्दी 'हूएऽ' 'हूएऽ'
की आवाज करने लगते हैं। मक्के के मुंह खाकर या तो उल्लास में या
उपहास में सियार खूब बोलते हैं। अकेला सियार भी एक अलग
सूचक आवाज देता है जो 'हूएऽऽ' की आवाज से भिन्न होती

है और 'हाउ' की सी होती है। सियार की आवाज किस दिशा में हुई है और किस प्रहर में हुई है से अब भी लोग शकुन और अपशकुन का अनुमान लगाते हैं। ठग लोग तो सियार के मार्ग काटने और उसके बोलने को शकुन को बेहद मानते थे। ठगों में यह बात प्रचलित थी कि 'रात को बोले तीतुरा, दिन कूँ बोले स्यार,
तजि चलिये वा देसरा नहि परै अचानक धार।'

सियार जितना भेड़िये से डरता है उतना शेर बाघ से भी नहीं। शेर बाघ के तो वह मार से दूर रह कर पीछे पीछे चला जाता है, पर भेड़िया सियार को मार कर खा जाता है। भेड़िया द्वारा पीछा किए जाने पर चालाक सियार आदमियों की ओर भागता है क्योंकि वह जानता है कि भेड़िया आदमियों की ओर नहीं आयेगा। एक बार भेड़िया एक नाले में जा रहा था, सियार ने उसे दूर से देख लिया तो झट टाँगे ऊँची करके वह लेट गया और भेड़िये को अपनी टाँगों से लकड़ी होने का धोखा दे दिया पर सियार लड़ता भी खूब है। अगर एक सियार कई कुत्तों में फँस गया हो तो उसकी आवाज पर कई अन्य सियार आकर उसकी मदद करते हैं और कुत्तों से लड़ते हैं।

जब सियार पागल हो जाता है तब वह ववाले जान ही बन जाता है। कभी कभी अपने पागलपन में वह एक ओर से काटना शुरू करता है और एक रात में ५०-५० आदमी या जानवरों को काट लेता है। पागल सियार पानी से बहुत डरता है और पागलपन की हालत में भूखा प्यासा दाँत किटकिटाता हुआ भागता फिरता है तथापि जो भी चीज सामने आती है उसे काटता मंगोड़ता चला जाता है। पागल सियार से कुत्ते डरते भी हैं। अगर पागल सियार के काटने पर इंजैक्शन लगवा कर फौरन इलाज न किया जाय तो काटे हुए व्यक्ति की बहुत बुरी तरह मृत्यु हो जाती है। पागलपन का असर हो जाने पर कोई भी दवा काम नहीं करती।

* गन्ना खाने का तरीका सियार का यह है कि वह गन्ने को दाँतों में दबा कर रस चूसता है पर दाँतों में दबाकर जितना रस मुँह में आ जाता है अति पीकर बाकी गन्ने को छोड़ देता है। दक्षिण भारत में तो वाइनाड जिले में कहवे के पके बीजों को भी वह खा जाता है।

जंगली कुत्ता

भारतीय जंगली कुत्ता भेड़िये और गीदड़ से इन अर्थों में विशेषता रखता है कि इसकी दाढ़े अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। इसकी बनावट भी भेड़िये की अपेक्षा गीदड़ से अधिक मिलती है। यह बात इसकी अपेक्षाकृत छोटी टाँगों से स्पष्ट है। हिमालय के पास पाये जाने जंगली कुत्ते के तो ऊनी समूर भी अधिक होता है। जंगली कुत्ते के ऊपरी भाग का रंग लाली मायल बादामी होता है जिसमें कभी कभी सिलेटी झलक रहती है। पूंछ का सिरा काले रंग का होता है पर कभी कभी अंतिम छोर सफेद भी होता है। जंगली कुत्तों के छोटे बच्चों का रंग भूरा सा होता है।

इसकी लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक ३७॥ इंच होती है और बिना बालों की पूंछ ८ इंच तथा बालों सहित पूंछ की लम्बाई १४॥ इंच होती है। जंगली कुत्ता आसानी से हर एक को जंगलों में दिखाई नहीं देता पर चिड़ियाघरों में इसे देख लेना चाहिए। पर चिड़ियाघर में उसे देख कर उसकी चालाकी मक्कारी और शिकार करने के ढंग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

भारतीय जंगली कुत्ता हिमालय के बनों में कश्मीर से लेकर असम तक सब जगह पाया जाता है। हिमालय के दक्षिण में भारत के सब बड़े जंगलों में वह रहता है। जंगली कुत्ते की मादा प्रायः शीतकाल में दो या चार या छः तक बच्चे देती है। यह आबादी से दूर रहता है और आदमियों पर आक्रमण नहीं करता। भेड़िया और गीदड़ तो पल जाते हैं पर जंगली कुत्ता नहीं पलता इससे यह स्पष्ट है कि पालतू कुत्ते और जंगली कुत्तों के पूर्वज एक ही नहीं थे।

ये कुत्ते टोली में रहना पसंद करते हैं। इनकी बड़ी भारी शक्ति गिरोह बंदी ही है। दस-दस, बारह-बारह, पंद्रह बीस तक की इनकी टोली होती है। यह टोली जिस जानवर के पीछे पड़ जाती है उसे बिना मारे नहीं छोड़ती। आगे पीछे से जानवर को घेर कर ये कुत्ते उसे भगाना शुरू कर देते हैं। थक कर जानवर पानी पीने को भागता है और जैसे ही पानी पीना शुरू करता है, ये चिपट पड़ते हैं। उस जानवर को न खाने देते हैं न आराम करने देते हैं, थका थका कर बेदम कर देते हैं।

~~नीलगाय और सांभर कभी कभी अपने बचाव~~ के इतना सा प्राणी जंगली जानवरों के लिए पूरा शैतान है। शैतान से भी एक बार हिरन, चीतल और सांभर भले ही बच जायं पर जंगली कुत्तों के समूह से वे नहीं बच सकते। नील गाय और सांभर कभी कभी अपने बचाव के लिए पानी में घुस जाते हैं, पर इस शैतानी समूह से वहां भी उन बेचारों का बचाव नहीं होता। लात या सींगों से दो चार कुत्ते मर भी जायं, तब भी उनको कोई चिन्ता नहीं होती। और तो और जंगली कुत्तों से शेर और बाघ तक डरते हैं तथा जिस जंगल में ये कुत्ते पहुंच जाते हैं, वहां से वे कूच कर जाते हैं।

साधारणतया जंगली कुत्ते पालतू जानवरों पर आक्रमण नहीं करते पर कभी कभी भैंस जैसे बड़े जानवर को भी घेर कर वे मार लेते हैं। आगे से आक्रमण करते हैं, पीछे से घेरते हैं। गले में कीले चुभा देते हैं और नाक से चिपट रहते हैं तब ~~मार डालते हैं~~ बाकी के कुत्ते पीं से उसे फाड़ डालते हैं।

शेर एक तो स्वयं ही इनसे बचता है, दूसरे जंगली कुत्ते भी शेर को तरह देते हैं, पर अगर कभी शेर के मोर शिकार पर ये कुत्ते पहुंच गए और शेर ने झपट्टा मार कर दो एक कुत्ते मार दिए तो शेर की मौत का वारंट ही कट जाता है। ये शेर को घेर लेते हैं और उसे सोने तथा खाने तक नहीं देते। जंगली कुत्ते जानते हैं कि शेर की एक थाय से एक कुत्ते का कचूमर निकल सकता है अतः वे उस पर एकदम हमला नहीं करते। बस घेरे रहते हैं और जब शेर खाने लगता है तब पीछे से मुंह मारते हैं। जो कुछ भी हो, ये शेर को खाना नहीं खाने देते। क्रोधित शेर चल पड़ता है, पर कुत्ते उसका पीछा नहीं छोड़ते। आगे पीछे, अगल बगल चलते रहते हैं। शेर चिढ़ कर भागता है, तब ये भी चाल बढ़ा देते हैं। शेर जब पानी में घुसने लगता है, तब ये पीछे से पूंछ और बगल में मुंह मारते हैं। क्रोधित शेर गुर्रा कर पीछे को लपकता है, तो ये उसकी मार से दूर भाग खड़े होते हैं। फिर शेर जब पानी में मुंह लगाता है तब जंगली कुत्ते पीछे से मुंह मारते हैं। घबरा कर शेर दुलकी चाल से जाकर साया में बैठना चाहता है तब भी कुत्ते उसे चैन नहीं लेने देते। शेर को ज़रा झपकी लगी नहीं कि कुत्तों ने फौरन पूंछ पर

झपट्टा मारना शुरू किया। बिल्ली की जातिवालों का सबसे बड़ा अपमान है उनकी पूंछ खींचना। ये कुत्ते मिल कर शेर का अपमान करते हैं। मजा यह है कि खुद तो कुत्ते बारी बारी से पानी पी आते हैं, आराम कर लेते हैं, खा पी लेते हैं, पर शेर पर धरना जारी ही रखते हैं। परेशान, घबराया हुआ शेर भाग खड़ा होता है, बस भागते भागते उसके पैरों की चर्बी पिघल जाती है। तब शेर बेचैन होकर बैठ जाता है, पर कुत्तों रूपी यमदूत अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। इस तरह कोई भी प्राणी कैसे जीवित रह सकता है शेर भी मांगल सा हो जाता है। जब शेर भूख प्यास और थकावट से अधमरा हो जाता है, तब कुत्ते उस पर चिपट पड़ते हैं। कोई पेट फाड़ता है, कोई कहीं काटता है तो कोई कहीं। दो चार कुत्ते मारे भी जाते हैं, पर इस बात की तो जंगली कुत्तों को चिन्ता ही नहीं है। वे सब तो मिल कर शेर को मार ही लेते हैं। इसी से समझ लेना चाहिए कि नीलगाय, सांभर, और चीतल की क्या बिसात जो इन जंगली कुत्तों के शैतानी-समूह से बच सके। जिस जंगल में ये घुस जाते हैं वह जंगल अन्य जंगली जानवरों से सुनसान-सा हो जाता है।

जंगली कुत्ता मारने के लिए सरकार की ओर से काफी इनाम है। जंगली जानवरों के दुश्मन नम्बर एक इस जंगली कुत्ते के मिट जाने से लाभ ही है, हानि नहीं।

लोगों का भ्रम है कि भारतीय जंगली कुत्ता तेज दौड़ने और उछलने में कुशल नहीं है पर ऐसी बात नहीं है उसकी गति ही धीमी प्रतीत होती है। क्योंकि भारतीय जंगली कुत्ते की चाल की गति एक सी ही रहती है तथापि वह बहुत कम थकता है। वह लम्बी दुलकी चाल और पोहया तथा सरपट दौड़ने में कुशल नहीं है। वह एक बंधी गति से दौड़ता है और सब बातें मिला कर सियार की अपेक्षा कम फुर्तीला होता है।

भारतीय जंगली कुत्तों के बारे में एक भ्रम यह है कि ये जिसका शिकार खेलते हैं, उसकी आंखों पर पेशाब कर देते हैं। यह बात बिल्कुल गलत है। इसी तरह की हरकत एक अमरीकी जानवर स्कंक अपने बचाव

की खाति करता है, पानी वह एक तरल ~~पदार्थ~~ पदार्थ
फेंकता है। ~~एक फुफकार का थूकने वाला काला सांप (सिंगल) या~~
~~सिंगिंग फॉक्स भी ऐसा ही करता है और शत्रु की~~
~~आंखों में थूक निशाना ले कर थूकता है, जिस के पड़ते~~
~~ही शत्रु की आंख बेचैन हो जाती है और उसे दिखाई~~
~~पड़ना बन्द हो जाता है। अगर तत्काल उपचार समुचित उपचार~~
~~मिल सके तो काफी दिनों में दृष्टि फिर लौट आती है।~~ पर
जंगली कुत्तों का तो समूह होता है और वह बार बार आगे उछल कर
झाड़ियों पर वेशाब करते हैं। संभवतः इनसे बचने वाला
जानवर झाड़ी से टकराता है तब वेशाब की बूंदे उसकी
आंखों में पड़ जाती होंगी।

मार्च सन् १९२५ में लेखक ने मध्यप्रदेश के दो बजे
के लगभग अप्पीकेरा और डोईवाला के बीच एक विचित्र
दृश्य देखा। हल्का देहरादून सड़क से उतर की ओर घने जंगल
में से बड़ा हुआ और दौड़ने की आवाज हुई। लेखक घोड़े की रास
खींच कर खड़ा हो गया और थोड़ी ही देर में एक बड़ा
झांक (नर चीतल) हांपता हुआ वन से निकला और उसके
१५ २० गज पीछे सात आठ जंगली कुत्ते जीभें निकाले हुए झांक
का पीछा कर रहे थे। झांक की गति से प्रतीत होता था कि
वह काफी थका हुआ और शायद कई घंटों से वह जंगली
कुत्तों से बचने का प्रयास कर रहा था। सामने पानी का दोरा
सा गड्ढा था। झांक उस गड्ढे में ही कूद पड़ा पर गड्ढे में इतना
पानी न था कि वह तैर कर बाहर जाता। यदि तालाब लंबा
चौड़ा होता तो झांक बचने का शायद कुछ और भी प्रयत्न
करता क्योंकि चीतल तैरने में बड़े दक्ष होते हैं। गड्ढे का पानी
झांक की छाती तक था और कुत्तों ने अवसर न तोड़
~~तत्काल~~ कौन पानी में कूद पड़ ~~तभी~~ थोड़ी ही देर में तैर कर
झांक ~~चीतल~~ की बगलों तथा पिछाड़ी से जा लगे और फाड़ डाला।
झांक के गिरते ही लेखक ने तीन कुत्तों को मार दिया, बाकी
कुत्ते जंगल में भाग गए। ~~उसके~~
भारतीय जंगली कुत्ते दिन में भी शिकार
खेलते हैं और रात में भी।

लोमड़ी

लोमड़ी विश्व के प्रायः सब ही देशों में पायी जाती है ~~और~~ पर बरफीली क्षेत्रों में पाई जानेवाली लोमड़ी की खाल अपने समूर के कारण बड़ी कीमती बिकती है। सम्भ्रांत मुख और महिलायें बड़े चाव से इसे अपने गरम कपड़ों पर लगवाते हैं। उत्तरी ध्रुवी क्षेत्र साइबेरिया तथा अन्य ठंडे इलाकों में इसे फंदे से पकड़ते हैं और इसकी खाल का काफ़ी व्यापार होता है। हमारे देश की लोमड़ी भी बड़ी सुंदर होती है पर उसकी खाल उतनी अच्छी नहीं होती। लोमड़ी की मक्कारी जगत प्रसिद्ध है और उसके विषय में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों में विशेषकर ब्रज में 'लुखरपेच' शब्द का प्रयोग लोमड़ी द्वारा की गई धूर्तता और चालाकी के लिए प्रयुक्त होता है। हमारे देश में लोमड़ी हिमालय की तराई से चुर दक्षिण तक पाई जाती है। घने जंगलों में रहना लोमड़ी पसंद नहीं करती इसलिए खुले मैदान तितरे बितरे जंगल और खेत ही लोमड़ी के रहने के स्थान हैं।

भारत की लोमड़ी एक छोटा सा जानवर है जिसकी लंबाई नाक से पूंछ की जड़ तक बीस इंच होती है। पूंछ की लंबाई १३-१४ इंच होती है। झबरी पूंछ फूली-सी होती है जिसका अंतिम सिरा काला होता है। कान भूरे और शरीर का रंग लालपन लिए भूरा होता है। जब खुशी से लोमड़ी चलती है, तब पूंछ जमीन से छूती रहती है, पर जब भागती है तब पूंछ ऊपर उठ जाती है। बचाव के समय जब वह दिशा बदलती है तब उसकी पूंछ ऊपर सतर खड़ी हो जाती है।

लोमड़ी रास्ते से हटकर ऊंचे से स्थान में रहने के लिए ~~[illegible]~~ मिटा बनाती है जिसमें कई एक मुंह होते हैं जिनमें से कुछ मुंह अंधे होते हैं। कभी कभी तो वह अपने आप ~~मांद~~ बिल खोदने का कष्ट नहीं करती और बिज्जू आदि जानवरों के खुदे खुदाये ~~बिलों~~ मिटों पर जबरदस्ती कब्जा कर लेती है। मादा लोमड़ी फरवरी मार्च या अप्रैल में चार तक बच्चे देती है। बच्चों की आंखें खुल जाती हैं तब प्रातःकाल सूर्य निकलने पर लोमड़ी मांद के ऊपर बच्चों को लेकर धूप में बैठ जाती है और बच्चे खूब खेलते हैं। किसी को भी उधर से आता जाता देख बच्चे एकदम बिल में घुस जाते हैं और लोमड़ी दूर भाग जाने का सा बहाना करती है।

चूहे, चिड़ियां, छिपकलियां, कीड़े, अंडे

तथा फल आदि लोमड़ी की खुराक है। मुर्गी पालकों के लिए लोमड़ी मुर्गी-चोर होने के नाते बड़ी कष्टदायक है। मुर्गीखाने की जाली के नीचे जमीन खोदकर वह मुर्गियों और अंडों की चोरी करती है।

कुत्तों को चमका देने और उल्लू बनाने में लोमड़ी बड़ी सिद्धहस्त होती है। चकमा देकर वह कुत्तों को थका देती है और वे उसे छोड़ कर भाग जाते हैं। कुत्तों से पीछा किए जाने पर अगर लोमड़ी को टीला मिल जाता है, तो टीले का चक्कर काटती है और तेजी से ऊपर चढ़ जाती है। कुत्ते उल्लू बन कर चक्कर काटते और इधर उधर देखते हैं। यदि ऊपर टीले पर कुत्तों ने इसे देख लिया तो फिर वह आगे चलकर 'बिलकइयाँ' काटती है। लेखक ने कई बार देखा है कि कुत्ते से पीछा किए जाने पर वह एक बड़े आक के पेड़ के पास खड़ी हो जाती है और कुत्ता दूसरी ओर से आक्रमण के लिए खड़ा हो जाता है। लोमड़ी इधर उधर हिलती है, कुत्ता झपट्टा मारता है और लोमड़ी आक के ऊपर से छलांग मार कर तेजी से भागी चली जाती है। जैसे ही कुत्ता पास आता है कि लोमड़ी एकदम समकोण बनाकर दाएँ बाएँ हो जाती है। कुत्ता दौड़ की तेजी में पांच-छः गज आगे चला जाता है और लोमड़ी खड़ी होकर ऐसे देखती है, मानो कुत्ते पर हंस रही हो। आखिर कुत्ता झख मार कर उसे छोड़ जाता है। कभी-कभी तो इस प्रकार चक्कर काटने में जैसे ही लोमड़ी की पूंछ ऊपर उठती है, कुत्ते का मुंह लोमड़ी की पूंछ में लगता है और पूंछ के बाल उसके मुंह में भर जाते हैं। कुत्ता बाल थूकता रह जाता है कि लोमड़ी बच भागती है।

अंग्रेजी में लोमड़ी की शिकार (फौक्स हंटिंग) पर बड़ी रोचक पुस्तकें हैं। कुत्तों को लोमड़ी के शिकार के लिए विशेष ट्रेनिंग दी जाती है। कुत्तों को छोड़ दिया जाता है और वे उसकी गंध का पीछा करते हैं। लोमड़ी की चालाकी और कुत्तों को झांसा देने की एक कहानी इस प्रकार है कि जब एक शिकारी के कुत्ते लोमड़ी का पीछा करते तो घास के मैदान के किनारे लोमड़ी नीचे को छलांग भरती। नीचे खड़ी चट्टानी पहाड़ी थी। लोमड़ी जैसे ही नीचे छलांग भरती वैसे ही कुत्ते भी कूद पड़ते और नीचे गिर कर मर जाते। कई बार लोमड़ी ने जब झांसा दिया तब शिकारियों ने खोज की कि चट्टान के सहारे ही लोमड़ी ने अपने बचाव का स्थान बना लिया था और स्वयं तो घास के मैदान से कूद कर चट्टान में अपने स्थान पर जा बैठती थी तथा कुत्ते नीचे गिर कर मर जाया करते थे।

हमारे देश में दिसम्बर जनवरी और कभी

कभी फरवरी के प्रारंभ तक लोमड़ी के नर की आवाज रात में 'खो' 'खो' 'खो' सुनाई पड़ती है। सूर्योदय के बाद तक भी नर उसी आवाज में ~~[illegible]~~ मादा का आह्वान करता है। अज्ञान वश गाँववाले कहते हैं कि लोमड़ी जाड़े के मारे रात में चिल्लाती है कि — 'अब घर करूँ कि अब घर करूँ' पर जब सूर्योदय के बाद भी लोमड़ी की आवाज सुनाई पड़ती है तो कहते हैं कि अब धूप खाकर कहती है, 'बलाय घर करै बलाय घर करै' पर 'खो' 'खो' आवाज को ~~[illegible]~~ नर लोमड़ी जाड़े के मौसम में ही करती है और अर्धवयस्क लोमड़ी को अपने साथियों को बुलाने के लिए लेखक ने 'औउऽ' 'औउऽ' की आवाज करते सुना है।

लोमड़ी की चतुराई के विषय में कहा जाता है कि वह अपने बिल के मुँह पर किसी के पैर के निशान भी अगर देख लेती है तो फिर वह वहाँ नहीं रहती और दूसरा बिल बदल लेती है। शत्रु को अपने अति समीप आया जान और यह समझ कर कि वह उससे भाग कर पीछा नहीं छुड़ा सकती तो इस प्रकार दम साध कर जमीन पर पड़ जाती है मानो मर गई हो। ठोकर मारने, इधर घसीटे जाने पर भी कभी कभी वह टस से मस नहीं होती पर जैसे ही वह जान पाती है कि शत्रु चला गया वैसे ही नौ दो ग्यारह हो जाती है।

चरख वंश

(Family Hyaenidae)

चरख-वंश में केवल चरख ही एक जीव है। अन्य और कोई जीव इस वंश में नहीं आता। अपने शरीर रचना की दृष्टि से वह न तो बिल्ली वंश में आता है और न कुत्ता वंश में।

चरख भारी भरकम जीव है और अगली अपेक्षाकृत लंबी टांगो के कारण विचित्र प्राणी है। इस युग में चरख केवल ग्रीष्म प्रधान देशों तक ही सीमित रह गया है पर पहले ठंडे देशों में भी मिलता था। इसके अगले और पिछले दोनों ही पंजों में केवल चार चार नाखून होते हैं। समूर कड़ा और भद्दा होता होता है।

चरख के दांतों की संख्या ३४ होती है जो इस प्रकार होते हैं:- $\frac{3}{3}$ कृंतक दांत, $\frac{1}{1}$ कीले, $\frac{4}{3}$ दूध की डाढ़ें, $\frac{1}{1}$ डाढ़ें। बिल्ली वंश और चरख के दांतो की समता केवल मांस ही के दांतो तक ही है। दूध की डाढ़ों का ऊपरी भाग ~~होता है तथा~~ नुकीला होता है इसीलिए मांस दांत और कीलों की सहायता से चरख किसी भी बड़े बैल की टांग ऐसी आसानी से तोड़ डालता है जैसे कुत्ता मुर्ग़ की टांग को। चरख के जबड़े की शक्ति इतनी अधिक है कि अन्य किसी भी मांसाहारी जीव की नहीं है।

चरख के नाखून छोटे और भौंथरे होते हैं पर उनकी मजबूती में कोई अंतर नहीं आता और मिट्टी खोदने के काम में खूब आते हैं।

चरख वंश की जीभ भी बिल्लियों की तरह खुरदुरी होती है। उसके विपरीत ये प्राणी मुर्दाखोर होते हैं।

चरख या लकड़बग्घा (Hyaena)

चरख या लकड़बग्घा या हड़हा भारतवर्ष का एक विचित्र जानवर है। इसे अँग्रेजी में 'हाइना' कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है।—

१- चित्तेदार या हंसोड़ चरख (स्पॉटैड हाइना)
२- भूरा चरख (ब्राउन हाइना)
३- धारीदार चरख (स्ट्राइप्ड हाइना)

चित्तेदार चरख और भूरे चरख अफ्रीका में होते हैं। हमारे देश में तो केवल धारीदार चरख होता है। तीनों प्रकारों में सबसे बड़ा और खतरनाक चित्तेदार चरख है। प्रकृति की म्यूनिसिपैलिटी में जो स्थान पक्षियों में गीध को प्राप्त है, लगभग वही स्थान मुर्दार और गंदगी खाने वाले जानवरों में चरख का है।

चरख देखने में बड़ा ही बदसूरत और घिनौना पशु है। अपनी साधारण चाल पर जाता हुआ चरख ऐसा प्रतीत होता है मानो वह लंगड़ा हो और अपने शरीर को घसीट घसीट कर ले जा रहा हो। ऐसी चाल का यह कारण है कि चरख का अगला भाग भारी होता है, अगली टांगें भी बड़ी होती हैं जिनसे वह बड़ी आसानी से मिटे खोद लेता है। पीछे की टांगें प्रवेक्षित छोटी होती हैं और पिछला भाग हलका होता है। अतः चलने में चरख पिछला भाग घसीट कर ले जाता हुआ मालूम होता है।

नाक से पूँछ के सिरे तक चरख की लम्बाई साढ़े चार फुट होती है, जिसमें अकेली पूंछ का नाप डेढ़ फुट है। चरख का रंग पिलछौंह सिलेटी होता है, जिस पर खड़ी और आड़ी कालापन लिए धारियां पड़ी होती हैं। इसका मुँह काला, कान खड़े, जबड़े बहुत मजबूत, गरदन मोटी और बहुत मजबूत होती है। रीढ़ की हड्डी जो सिर और कंधों को जोड़ती है इतनी मजबूत होती है कि जुड़ी सी प्रतीत होती है। आगे की टांगें बड़ी पिछली छोटी होती हैं। पंजों में अन्य मांसाहारी जीवों की तरह पांच उंगलियां न होकर केवल चार ही ~~अंगुलि~~ उंगलियां होती हैं। गरदन और पीठ पर काफ़ी बड़े बाल होते हैं और पूंछ भी काफ़ी बड़ी होती है।

भारतवर्ष में चरख प्रायः सब जंगलों में पाया जाता है। जंगलों के अतिरिक्त चरख नालों, कछारों, ऊबड़ खाबड़ भीटों और बड़े छिपने के स्थानों में भी मजे से रहता है क्योंकि वह ~~इसकी खुराक~~ ~~तो हड्डी है~~ लेता है जिसके चबाने के कारण इसका नाम हड़हा भी है। चरख की मादा एक बार में ४-५ बच्चे देती है जिन पर बड़ी स्पष्ट और चौड़ी धारियां पड़ी होती हैं जो बड़ी उमर में पतली हो जाती हैं।

चरख की खुराक सब प्रकार के मुर्दार है। गंदगी और मुर्दार खाने वाला जानवर प्रकृति की चुंगी का एक बड़ा सदस्य है पर जंगलों के कम हो जाने से इसकी खुराक भी कम हो गई है। चरख का जबड़ा इतना मजबूत होता है कि वह सूखी

मोटी हड्डियों को भी आसानी से चबा लेता है। एक प्रकृति प्रेमी ने तो चरख के लिए लिखा है कि उसका जबड़ा शेर-जैसा होता है और दिल-चूहे का सा, अर्थात् चरख स्वभावतः कायर होता है पर उसके जबड़े की पकड़ बड़ी कारगर और खतरनाक होती है। कायरों के स्वभाव की पहचान है कि वे अपने से कमजोर या दबने वाले पर भयंकर आक्रमण करते हैं। जबड़े की ताकत का अनुमान तो इसीसे लगाया जा सकता है कि यदि चरख बड़ी से बड़ी भैंस की टाँग पकड़ ले तो उसे फौरन तोड़ सकता है। बैल की रान पर उसके जबड़े का पूरा प्रहार हो जाय तो उसे तत्काल उखाड़ दे।

अफ्रीका में तो चरख टोली बांध कर भी शिकार खेलता है, पर हमारे देश में इक्का दुक्का ही दिखाई पड़ता है। दिन भर तो चरख किसी मांद या झाड़ी में पड़ा सोता रहता है और वह सायंकाल होते ही निकल पड़ता है। कुत्ता खाने का शौकीन चरख रात को आसानी से कुत्ता पकड़ कर खा लेता है। मादा चरख कभी कभी झाड़ी की आड़ में बैठ जाती है और नर गाँव की ओर जाकर कुत्तों को देखकर बनावटी डर से भागता है। कुत्तों की वैसे तो चरख को देखकर सिट्टी गुम हो जाती है पर जब वह भागने लगता है तब कुत्ते उसका पीछा करते हैं और जैसे ही नर चरख झाड़ी के सामने होकर कुत्तों को अपने पीछे भगाता हुआ लाता है, मादा चरख किसी न किसी कुत्ते को गपक लेती है। यदि एक बार चरख के दांत किसी कुत्ते पर जम गए तो फिर वह बच नहीं सकता। जहाँ से भी पकड़ता है तोड़ देता है। वीरता और लड़ने में प्रसिद्ध बुलटेरियर कुत्ते भी चरख से घबराते हैं। हाँ, एक बार लेखक की एक बहुत फुर्तीली बुलटेरियर कुतिया की गरदन पर चरख ने झपट्टा मारा और इससे पहले कि वह उसकी गरदन तोड़ डाले बिजली की गति से 'बिजली' नाम की उस कुतिया ने पलटा खाया और लोह लुहान गले की फटी लटकती खाल सहित सरपट भाग आई। फौरन ही अस्पताल ले जाकर कुतिया की गरदन को डाक्टर से सिलवाया और पर्याप्त उपचार के बाद वह ठीक हो गई।

चरख कायर ही नहीं धूर्त भी होता है। उसकी धूर्तता का एक ढंग यह है कि वह चुपचाप किसी बिना बँधे बछड़े-बछिया या गधे के पास आ जाता है विशेष कर खुले बैठे जानवर के पास। जब जानवर उसे देखकर डर कर बिदक कर भागता है तो लड़खड़ा कर गिर पड़ता है, बस चरख की बन आती है। अगर कोई जानवर मुकाबला कर बैठे, तब फिर चरख आक्रमण नहीं करता। इसलिए तन्दुरुस्त जानवर ही बिदक जाने पर चरख का शिकार बनते हैं, बीमार और कमजोर जानवर तो न जल्दी बिदक कर डर कर भागते हैं न पकड़े जाते

हैं। रात में यात्रियों को कभी कभी चरख सड़क पार करते हुए दिखाई दे जाता है और उसके मुंह में गाय या भैंस की पूरी की पूरी टांग लगी रहती है।

जंगल बुरी तरह से काट डाले गए हैं और हिरनों तथा खरगोशों को आदमियों ने भी बहुत मार कर खा लिया है। प्रकृति में चोर बाजारी और परमिट से शिकार खेलने का नियम जानवरों के लिए नहीं है अतः चरख की खुराक वहाँ कम हो गई है। तेज़ वह दौड़ नहीं सकता इसलिए अपनी भूख बुझाने के लिए वह गांवों से कुत्ते मुर्गी, बतख, भेड़-बकरी ही नहीं आदमी के बच्चों तक को उठा ले जाता है। बच्चे ले जाने में तो वह ढिठाई भी करता है और ६-७ फुट ऊंची दीवारों को लांघ कर मां के पास सोये बच्चे तक को उठा ले जाता है और मां को प्रायः पता नहीं चलता कि चरख बच्चा ले गया। उसके शैतानी जबड़े तीन चार वर्ष के बच्चों को ही नहीं १२-१३ वर्ष तक के बच्चे को उठा ले जाते हैं। छोटे बच्चे के कंधे और छाती को मुंह में दाब जमीन से ऊंचा कर के वह ले जाता है। बड़े बालक को गरदन से पकड़ कर घसीटता ले जाता है। पीछा किए जाने पर वह बच्चे या लड़के को सहज नहीं गिराता, जब अपने को लोगों और लाठियों से घिरा समझ लेता है तब ही बच्चे को छोड़ता है। इस प्रकार घेरे घार कर कभी कभी आदमी चरख को मार भी लेते हैं। पर एक बार चरख के दांतों के नीचे आया लड़का या बच्चा कभी भी नहीं बचता।

कभी-कभी, विशेषकर गरमियों में, गावों में चरख का आतंक इतना फैल जाता है कि लोगों को बच्चों की रक्षा के लिए विशेष प्रबंध करना पड़ता है। पर वह तो छोटी दीवारों को आसानी से पार कर, छोटे बच्चों को मुंह में दबा कर दीवार फांद कर चला जाता है। लेखक ने हरदोई ज़िले में एक ऐसा चरख आसानी से मारा था, जिसने आसपास के चालीस बच्चे खा लिए थे। गाँव से दो मील दूर एक छोटे जंगल के किनारे वह एक अंधे कुए की बगल में भिटा बना कर रहता था। बड़ी मुश्किल से एक साधारण जंगल के किनारे पर एक अंधे कुए में उसकी भाट मिली। बाहर हड्डियों का ढेर लगा था जिससे स्पष्ट था कि वहीं कहीं चरखा रहता है। खोज भी ताज़ा थी। सायंकाल को एक लेंडी कुत्ता हड्डियों के पास बांध दिया और आड़ में भाटे के सामने बैठ कर लेखक ने चरख की प्रतीक्षा की। सूर्यास्त से पहले ही कुत्ते की आवाज और गंध से चरख ने अपना सिर भाट-मांद-से जैसे ही बाहर निकाला वैसे ही वह धुनक दिया गया।

प्रकृति में मुर्दार और गंदगी खाने के लिए सियार

मौजूद है अतः चरख की अब कोई आवश्यकता नहीं है। इसकी खुराक भी अब बहुत कम हो गई है। कुत्ते और गीदड़ की तरह चरख भी कभी कभी पागल हो जाता है और उन्हीं की तरह काटने भी लगता है। पागल चरख के काटे का इलाज भी वही होता है, जो पागल गीदड़ या पागल कुत्ते के काटे का होता है।

देखने से तो यह मालूम होता है कि चरख अपने पिछले भाग को घसीटता चलता है पर ऊबड़ खाबड़ जमीन में वह काफ़ी तेज़ चला जाता है और कभी कभी घोड़े पर पीछा किए जाने से ही पकड़ा जा सकता है। इस घिनौने और क्रूर पशु के बच्चे छोटी अवस्था में पकड़ कर लाने पर पाले जा सकते हैं। पर उन्हें कोई पालता नहीं है।

सिपार की भांति चरख की घ्राणशक्ति बड़ी तीव्र होती है। जहाँ मादा चरख बच्चा देती है वहाँ से भूल से कोई अगर निकल जाय तो कभी कभी मादा आदमी पर भी हमला कर बैठती है। चरख की आवाज बड़ी मनहूस और विचित्र होती है।

चरख का मारना कोई कठिन काम नहीं है। जहाँ होकर यह निकलता है। जिस गाँव में यह लगता हो वहाँ कुत्ते की गली में कुत्ते को बांध देना चाहिए और जलती लालटेन को इस प्रकार रखना चाहिए कि रोशनी कुत्ते पर तो पड़े पर बंदूकवाले शिकारी पर न पड़े। जब चरख निकले तब मार किया जाय। चरख मारे भी काफ़ी होता है। एक दो चरख जब किसी लाश को खाते होते हैं और बाध आ जाय तो वे उससे डरते नहीं है। भारत के अनेक स्थानों में चरख को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं और जब वह मारा जाता है तो बड़ी नफ़रत से उसका अपमान किया जाता है। गाँवों में रहनेवाली जनता को उसके पालतू पशु, पक्षी, और अपने बच्चे तक को खा डालने वाला घृणा का पात्र तो होता ही है।

कस्तूरी वंश (Family Viverridae)

कस्तूरी वंश को अंग्रेजी में 'सिवेट फैमिली' कहते हैं। इस वंश में अधिक जीव नहीं है और उनकी विशेषतायें हैं उनका मझौला आकार। उनमें कुछ छोटे भी होते हैं। मुँह की बनावट ~~कुत्तों की सी~~ लंबोतरी कुत्तों के मुँह जैसी तथा पैर छोटे ~~छोटे~~ होते हैं। इस वंश के सब जीव मांसाहारी होते हैं और पेड़ों पर आसानी से चढ़ जाते हैं। इस ~~परिवार~~ वंश के जीवों में आपस में काफी भेद होता है अतः उन्हें तीन उपवंशों में विभक्त करना उचित है:—

१- कस्तूरी उपवंश (Sub Family Viverrinae)
२- मुसंग उपवंश (Sub Family Paradoxurinae)
३- नेवला उपवंश (Sub Family Mungotinae)

कस्तूरी उपवंश का आकार लगभग बिल्लियों के आकार के बराबर होता है और गहरे चित्ते होते हैं तथा पूंछ के नीचे एक ग्रंथि होती है जो एक गंधयुक्त गाढ़े पदार्थ को बाहर निकालती है। इन जीवों की जीभ खुरखुरी होती है तथा नख ~~की~~ बिल्लियों की ~~मांस~~ तरह मांस की गद्दियों में भीतर घुसे रहते हैं। इस उपवंश में ~~कस्तूरी मा~~ ~~(Indian Small Civet) भारत का प्रसिद्ध जानवर है~~ भारत के प्रसिद्ध दो जीव हैं:—

(अ) कटास (Large Indian Civet) (ब) कस्तूरी (Small Indian Civet)

मुसंग उपवंश में कस्तूरी उपवंश के समान ही जीव हैं जो पेड़ों पर ~~आसानी से~~ चढ़ जाते हैं और ताड़ तथा खजूर के पेड़ पर भी चढ़ जाना इनके लिए आसान काम है। इनके पैरों की अंगुलियां एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ी रहती हैं और चीते की तरह नाखून मांस की गद्दी में आधे ही घुसते हैं। इस उपवंश में भारत के जीवों में प्रसिद्ध मुसंग या ताड़-बिल्ली है।

नेवला उपवंश में अकेला नेवला ही आता है जो ~~और~~ अपने वंश का सबसे छोटा जीव है पर साहस में सबसे ~~बढ़~~ बढ़-चढ़ कर है।

कटास (Large Indian Civet)

कटास हमारे देश के सब भागों में नहीं पाया जाता वरन् वह केवल उड़ीसा, बंगाल, ~~[illegible]~~ सिक्किम ~~[illegible]~~ और उसके पूर्वी जंगलों में ही मिलता है। कटास रात में ही निकलता है और दिन में जंगलों में पड़ा सोया करता है इसलिए बहुत कम लोग इसे देख पाते हैं।

अपनी खुराक की तलाश में रात में जंगल से सटे गाँवों में घुसकर बत्तख मुर्गियाँ तथा अन्य चिड़ियाँ पकड़ता है। स्वभावतः कखास प्रायः अकेला ही शिकार खेलता है। इसकी खुराक में विशेषकर छोटे मोटे ~~जीव~~ जीव और पक्षी हैं पर केवल इतने से ही उत्तम काम नहीं चलता या भूख नहीं बुझाने को पर्याप्त नहीं मिलता तो वह मेंढक, मछली, जड़ और फल फूल भी मजे से खा जाता है।

कखास की पूँछ के नीचे एक ~~ग्रंथि~~ गंध थैली होती है जिससे से एक गाढ़ा गंधयुक्त पदार्थ निकलता रहता है। कखास तैरता भी खूब है।

कखास का आकार नर से मादा कुछ बड़ा होता है और ढाई फुट से लेकर लगभग ३½ फुट की मोटी सी पूँछ होती है। कखास का रंग गहरे सिलेटी रंग का होता है और पीठ पर बाल काले होते हैं। उसके शरीर पर दोनों ओर धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं परन्तु आधी से अधिक पूँछ काली होती है। टाँगों के पास जड़ पर रंग सिलेटी होता है और वह भाग काली चौड़ी धारियों से युक्त होता है। छाती पर भी काली चौड़ी धारियाँ होती हैं। कखास की मादा एक बार में नई ऋतु में ३ से ४ तक बच्चे देती है। बच्चों की आंखें जन्म के समय खुली रहती हैं।

शिकारी कुत्ते या लेंडी कुत्ते जब शिकार पर जाते हैं और कखास की गंध पा जाते हैं तो फिर वे अन्य सब जानवरों के पीछे जाना छोड़ देते हैं।

कस्तूरी (Small Indian Civet)

हमारे देश के लगभग प्रत्येक भाग में कस्तूरी पाई जाती है तथा विभिन्न स्थानों में इसके विभिन्न नाम हैं। बंगाल में इसे गंधगोकुल कहते हैं तो कहीं सोनहा कहीं बौंदिया कहीं मुश्क-बिलाव और कहीं कस्तूरी कहते हैं। चूंकि कस्तूरी की पूंछ के नीचे एक गंध ग्रंथि होती है जिसमें से तेज गंधवाला गाढ़ा पदार्थ निकला करता है इसीलिए इसके ये सब नाम पड़े हैं। कस्तूरी बेचने वाले असली कस्तूरी में इसी गाढ़े पदार्थ को मिला कर बेचा करते हैं।

कस्तूरी की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक लगभग दो फुट होती है और डेढ़ फुट लंबी पूंछ होती है। उसके शरीर का ऐनक लिए सिलेटी होता है और उस पर

काली काली चित्तियां पड़ी होती है। पीठ पर की चित्तियां तनिक लंबी लंबी होती है जो पंक्तियां सी जान पड़ती हैं पर बाकी सब शरीर पर चित्तियों का सिलसिला नहीं होता। पूंछ पर भी काली काली गड़ारियां होती हैं पर पेट पर न चित्ती होती हैं न लकीरें सी। कस्तूरी के दोनों कानों के समीप से कंधों तक एक एक काली लकीर होती है तथापि गरदन के ऊपर भी थोड़ी सी खड़ी धारियां होती हैं।

कस्तूरी भी दिन के समय बिलों और खंडहरों में पड़ी रहती है और रात को ही शिकार के लिए निकलती है। केवल रात में ही निकलने के कारण वह दिखाई तो बहुत कम पड़ती है पर पशु-पक्षी पालक जानते हैं कि कस्तूरी के उपद्रव कम नहीं होते। लोमड़ी से भी अधिक यह पालतू चिड़ियों की चोर है। सारा दिन प्रायः सी जलाशय के सहारे उजड़े मकानों खुनसान स्थानों के बिलों में वह छिपी रहती है पर रात होती ही खुराक की तलाश करती है और छोटे छोटे जीव, अंडे, चिड़ियां, सांप, मेढक, कीड़े-मकोड़े सब जा खाती है।

इसका मुंह लोमड़ी की तरह और सारा शरीर बिल्ली की तरह होता है। कस्तूरी की मादा एक बार में चार-पांच बच्चे तक देती है और अगर बच्चे पकड़ लिए जायं तो वे बड़ी आसानी से पालतू बना लिए जाते हैं और शिकार कराने के काम में लाये जा सकते हैं। बिल्लियों की तरह इसके नाखून भीतर गद्दियों में छिप जाते हैं तथा जीभ भी खुरखुरी होती है।

मुसंग या ताड़बिल्ली (Indian Palm Civet)

मुसंग या ताड़बिल्लियों की दस जातियां हैं जिसमें से अकेले भारत में ही पांच पाई जाती हैं। खजूर के पेड़ पर नीरा को इकट्ठा करने के लिए जो बर्तन लटकाया जाता है उसमें से वह पेड़ पर चढ़ कर नीरा पी जाती है इसी कारण इसका नाम ताड़बिल्ली पड़ गया है। भारतीय ताड़बिल्ली भारत के अधिकांश भाग में पाई जाती है।

मुसंग की लम्बाई नाक से पूंछ की जड़ तक लगभग डेढ़-दो फुट होती है और इतनी ही लंबी उसके पूंछ होती है। उसके शरीर का रंग भूरापन लिए सिलेटी होता है जिस पर या तो काली काली धारियां सी होती हैं या सिलसिलेवार रंगीन सी होती है। अति लंबी पूंछ पर बस गड़ारियां नहीं होतीं। आकार में मुसंग बड़ी बिल्ली जितनी होती

है। हां टांगे बिल्ली से अपेक्षाकृत छोटी होती है। कान छोटे छोटे और गोल गोल होते हैं। आंख की पतली आड़ी होती है पंजों के नाखून मांस की गद्दी में घुस जाते हैं। पर इसके पैरों के तलुओं में एक विशेषता होती है कि चारों पैरों के तलुवे बालरहित नंगे होते हैं। तलुओं का यह गंजापन पैर के पीछे काफ़ी दूर तक जारी रहता है और उसमें एक भी बाल नहीं होता। मुसंग के पैर गहरे रंग के होते हैं। सिर के ऊपरी हिस्से से नाक के बीच तक एक खूब गहरे रंग की सीधी लकीर बनी होती है। मुसंग रचनीचर है और पेड़ तथा जमीन पर समान रूप से रहती है इसलिए इसके दांतों की बनावट आंशिक रूप से मांसाहारियों की सी होती है और आंशिक रूप से शाकाहारियों की सी।

यह सूखे नालों, खंडहरों, छतों के तख्तों में भी रहना पसंद करती है पर वैसे नारियल के पेड़ों और खजूर के पेड़ों पर विशेष प्रेम और रुचि से रहती है। मुसंग की खुराक अधिकांश मांस है जिसमें छोटे जीव, चूहे, छिपकलियां, लहरियां, चिड़ियां, मुर्गियां अंडे आदि सब है पर साथ ही साथ साग सब्जी भी वह उड़ा जाती है। पालतू दशा में तो पके चावल, रोटी, दूध, केला सब खा जाती है। तिलचहे खाने की तो मुसंग बड़ी शौकीन है।

दक्षिण भारत में तो इसे पाल भी लेते हैं और वह खूब हिल मिल जाती है। कोई कोई मुसंग तो मालिक के साथ आराम से खुली घूमती है और रात को तकिये के पास सो जाती है। कर्नल साइक ने एक स्थल पर लिखा है "वे चढ़ती उतरती बहुत हैं और मेरे मकान के एक कोने से वे बहुत चढ़ती उतरती थीं।" कस्तूरी वंश के अन्य जीवों के समान नाराज़ किए जाने पर मुसंग अपने शरीर से एक बहुत बुरी गंध छोड़ती है।

नैपाल और सिक्कम में पाई जाने वाली मुसंग की मूंछें सफेद होती हैं। पर दक्षिणी भारत की सुनहले से मुसंग की मूंछे गहरी भूरी होती हैं तथा बंगाल की खाड़ी के पूर्व की मुसंग की मूंछे काली होती हैं।

छुद्रदंत ताड़बिल्ली

छुद्रदंती ताड़बिल्ली या मुसंग दो प्रकार की होती है जिसमें से एक जो सफेद व छोटे दांत वाली होती है हमारे देश में केवल असम में पाई जाती है। इसपर गरदन से पूंछ की जड़ तक पीठ पर तीन स्पष्ट धारियां होती हैं जो पूंछ की जड़ पर जाकर टूट सी जाती हैं। नर की लंबाई नाक से पूंछ की जड़ तक २६½ इंच होती है और प्रति लंबी पूंछ की लंबाई २७ इंच होती है। पैर की गद्दियां मुकुल (बालरहित) होती हैं। अन्य सब बातों में यह

नेवला (Indian Mangoose)

हमारे देश में नेवले के चार भेद हैं और सारे भारतवर्ष में वह पाया जाता है :—

१ - सुनहरा नेवला, जो हिमालय-प्रदेश के कश्मीर आदि स्थानों में होता है।

२ - साधारण नेवला, जो दक्षिण भारत को छोड़ कर सारे देश में पाया जाता है।

३ - मद्रास का नेवला, जिसका रंग पीलापन तथा बादामी लिए होता है।

४ - 'भौंट', यह सब नेवलों में सबसे बड़ा होता है और इसका यह नाम उत्तरप्रदेश में है। यह प्रायः सायंकाल से लगाकर प्रातः सूर्योदय तक ही शिकार खेलता है।

नेवला अपने वेश का सब से छोटा जीव है क्योंकि मामूली नेवले की लम्बाई पूंछ को छोड़ कर सवा फुट होती है। इतनी ही लंबी इसके पूंछ होती है। नेवले के शरीर का रंग भूरा होता है जिसमें पीले और काले रंग की झलक होती है। शरीर पर के छोटे-छोटे बाल खुरदुरे होते हैं, जिन्हें हमला करते समय वह खड़े कर लेता है और उस समय वह दूना बड़ा मालूम पड़ता है।

यह बिल बना कर रहता है जो एक खोदी हुई नाली की तरह होता है। यह गांव के आसपास, नालियों में, खेतों के मोहानों में भी अपना घर बना लेता है। जंगलों और मैदानों में भी नेवला रहता है। नेवले की खुराक सब प्रकार के छोटे जीव हैं। अंडों और मुरगियों का तो वह बड़ा ही शौकीन होता है। अपने शिकार को मार कर नेवला कभी कभी केवल उसका मेजा ही खाकर छोड़ देता है। मांसाहारी नेवला रोटी, घी, मक्खन आदि खाद्य पदार्थ भी बड़े शौक से खाता है। क्षुधा में तीव्रता होने पर भी नेवला सांप को भी मार कर खा जाता है।

स्वभाव में सब नेवले एक से होते हैं। तेजी और उत्सुकता उनका स्वभाव है। नेवला आसपास की भौगोलिक स्थिति की जानकारी के विषय में बड़ा उत्सुक रहता है। यदि किसी मकान में वह आ जाता है, तो पहले हर कोने और हर कमरे की जानकारी प्राप्त करता है। यही हाल उसका जंगल में है। बहादुरी का तो नेवले को यह हाल है कि अपने से चौगुने से भी भिड़ जाता है। अगर कभी भूल से बिल्ली नेवले पर आक्रमण कर दे तो यह पूंछ और शरीर के बाल फुला कर, शरीर को ऊंचा करके बिल्ली के पास आते ही 'खर-खर' की आवाज से उसे

धमका देता है। बिल्ली डर कर भाग जाती है। कुत्ता जैसे ही नेवले पर आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला कूद कर कुत्ते की नाक में दाँत गड़ा देता है और कुत्ता 'कांय-कांय' करके भाग जाता है। यदि नेवले का आकार कुत्ते के बराबर होता और उसका वजन डेढ़ मन के करीब होता, तो वह शेर को भी कुछ नहीं समझता और गाय-बैल को भी शायद आसानी से ही मार लेता।

वैसे प्राकृतिक जीवन में संतुलन रखने के लिए नेवला बड़ा उपयोगी है। सांप, चूहा, खेती के अन्य हानिकारक जन्तुओं को वह बड़े शौक से खाता है। लोगों का भ्रम है कि सांप काटने पर नेवला एक जड़ी ला लेता है। पर असली बात यह है कि सांप को काटने का वह मौका नहीं देता। इन पंक्तियों के लेखक ने कई बार सांप और नेवले की लड़ाई देखी है। बाल फुला कर वह काले सांप का मुकाबला करता है और सांप जैसे ही आक्रमण करता है, वैसे ही नेवला सांप का फन मुंह में पकड़ कर चबा देता है। वह सदा सांप के मुंह पर ही वार करता है। सांप को मार कर इकट्ठा और उसे किसी सुरक्षित जगह में ले जाकर वह शान से खाता है। चामिन सांप में नहीं होता और वह मौका पाकर कभी कभी अपनी गुंजलक में दबा कर नेवले को मार भी देता है। एक बार एक चामिन सांप मक्के के पौधे पर चढ़ने लगा, पर नेवले ने पीछे से दौड़ कर उसकी पीठ पर चढ़ कर कचकचा कर दांत मारे। सांप गिर गया, पर दुबारा आक्रमण किए जाने पर चामिन सांप ने नेवले को अपनी गुंजलक में जकड़ लिया और मार दिया। जो कुछ भी हो बहुत ही थोड़े से अवसर आते हैं जब नेवले को सांपों से हार खानी पड़ती हो।

अति समझदार और चतुर प्राणी नेवला पेड़ पर भी बड़ी आसानी से चढ़ जाता है। दिन और रात किसी भी समय इसको देख सकते हैं। अतः इसके छोटे बच्चे अगर पकड़ लिए जायं तो बड़ी ही आसानी से पल जाते हैं। दूध बिला बिला कर छोड़ी नेवले का बच्चा थोड़े दिनों में ही गुरु आदि से गुजारा करना सीख जाता है और समय पाकर इतना हिल जाता है कि अपनी के पास चारपाई पर बैठा रहता है। मनुष्य के लिए नेवला बड़ा उपयोगी जीव है क्योंकि चूहों को तो वह छोड़ता ही नहीं है।

नेवले की स्वामि भक्ति भी अनेक कथायें द्वारा देश में प्रचलित है।